BAMM(N)-223

भारतीय संगीत शास्त्र – एवं प्रयोगात्मक
माइनर वोकेशनल– षष्ठम सेमेस्टर

संगीत में स्नातक (बी0ए0)
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
मानविकी विद्याशाखा
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

BAMM(N)-223

भारतीय संगीत शास्त्र – एवं प्रयोगात्मक
संगीत में स्नातक (बी0ए0)–षष्ठम सेमेस्टर
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग
मानविकी विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
तीनपानी बाईपास रोड, ट्रान्सपोर्ट नगर के पीछे,
हल्द्वानी – 263139
फोन नं0 : 05946–286000 / 01 / 02
फैक्स नं0 : 05946–264232,
टोल फ्री नं0 : 18001804025
ई–मेल : **info@uou.ac.in**
वेबसाईट : **www.uou.ac.in**

अध्ययन समिति

अध्यक्ष
कुलपति
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

संयोजक
निदेशक
मानविकी विद्याशाखा,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

प्रो0 पंकजमाला शर्मा(स.)
पूर्व विभागाध्यक्ष–संगीत विभाग
पंजाब विश्वविद्यालय, चंडीगढ़

डॉ0 विजय कृष्ण(स.)
पूर्व विभागाध्यक्ष–संगीत विभाग
कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

डॉ0 मल्लिका बैनर्जी(स.)
संगीत विभाग,
इग्नू, दिल्ली

प्रदीप कुमार(स.)
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी, नैनीताल

द्विजेश उपाध्याय(आ.स.)
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी, नैनीताल

जगमोहन परगांई(आ.स.)
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
हल्द्वानी, नैनीताल

अशोक चन्द्र टम्टा(आ.स.)
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

प्रकाश चन्द्र आर्या(आ.स.)
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम संयोजन

प्रदीप कुमार
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

द्विजेश उपाध्याय
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

जगमोहन परगांई
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

अशोक चन्द्र टम्टा
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

प्रकाश चन्द्र आर्या
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

प्रूफ रिडिंग एवं फार्मेटिंग

प्रदीप कुमार
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल

इकाई लेखन

1.	**डॉ अशोक चंद्र टम्टा**	प्रथम खण्ड़ – इकाई 1
2.	**डॉ जगमोहन परगाईं**	प्रथम खण्ड़ – इकाई 2,
3.	**डॉ महेश पाण्डे**	प्रथम खण्ड़ – इकाई 3,4,5
4.	**डॉ विजय कृष्ण**	प्रथम खण्ड – इकाई 6

कापीराइट : @उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
संस्करण : सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन प्रति
प्रकाशन वर्ष : जनवरी 2026
प्रकाशक : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल–263139
ई–मेल : books@uou.ac.in

नोट – इस पुस्तक की समस्त इकाईयों के लेखन तथा कॉपीराईट संबंधी किसी भी मामले के लिए संबंधित इकाई लेखक जिम्मेदार होगा। किसी भी विवाद का निस्तारण सत्र न्यायालय–हल्द्वानी अथवा उच्च न्यायालय–नैनीताल में किया जाएगा। इस सामग्री के किसी भी अंश को उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अथवा मिमियोग्राफी चक्रमुद्रण द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

BAMM(N)-223

भारतीय संगीत शास्त्र – एवं प्रयोगात्मक
संगीत में स्नातक (बी0ए0)–षष्ठम सेमेस्टर

इकाई 1– संगीत एवं योग का अंतरसंबंध।	पृष्ठ 1–41
इकाई 2– गायक एवं वादक के गुण एवं दोष।	पृष्ठ 42–53
इकाई 3– भारतीय संगीत में थाट पद्धति।	पृष्ठ 54–67
इकाई 4– बृहद्देशी एवं संगीत पारिजात ग्रन्थों का संक्षिप्त अध्ययनद्य।	पृष्ठ 68–77
इकाई 5– पाठ्यक्रम के रागों केदार एवं विहाग का परिचय, स्वर विस्तार एवं स्वर समूह के माध्यम से राग पहचानना; पाठ्यक्रम के रागों केदार एवं विहाग में छोटा ख्याल/रजाखानी गत को तानों/तोड़ों सहित लिपिबद्ध करना ।	पृष्ठ 78–90
इकाई 6– पाठ्यक्रम की तालों झपताल एवं दादरा ताल का परिचय एवं बोल समूह द्वारा ताल पहचानना; पाठ्यक्रम की तालों झपताल एवं दादरा ताल के ठेकों को दुगुन एवं चौगुन लयकारी सहित लिपिबद्ध करना।	पृष्ठ 91–97

इकाई 1– संगीत एवं योग का अंतरसंबंध।

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 संगीत का मानव जीवन में महत्व
1.4 संगीत का मानव जीवन में सामाजिक महत्व
1.5 संगीत का मानव जीवन में मनोवैज्ञानिक महत्व
1.6 संगीत का मानव जीवन में सांस्कृतिक महत्व
1.7 प्राचीन श्रुति स्वर चक्र व्यवस्था
1.7.1. श्रुति क्रम श्रुति नाम स्वर सप्तक स्थान
1.7.2. आधुनिक श्रुति स्वर चक्र व्यवस्था
1.8 आधुनिक हिन्दुस्तानी (उत्तर भारतीय) संगीत शैली
1.8.1. क्रमांक स्वर श्रुति सं.एवं नाम चक्र
1.9 संगीत एवं योग का आधार स्तम्भ श्वसन क्रिया
1.10 कंठ संगीत के सन्दर्भ में श्वसन क्रिया
1.11 योग के अनुसार श्वसन क्रिया
1.12 संगीत में प्राणायाम की उपादेयता
1.13 प्रणव साधना
1.14 सांगीत एवं योग साधना में साम्य
1.15 संगीत एवं योग साधना में अष्टांग योग का समान पालन
1.16 संगीत एवं योग साधना में गुरू का स्थान एवं महत्व
1.17 संगीत एवं योग में अभ्यास एवं साधना का महत्व
1.18 संगीत एवं योग साधना द्वारा शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव
1.19 सारांश
1.20 शब्दावली
1.21 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.22 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.23 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.24 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम बी0ए0एम0वी0(एन0)–223 के की पहली इकाई है।

संगीत और योग भारतीय संस्कृति की दो प्राचीन एवं दिव्य परम्पराएँ हैं, जिनका उद्गम वैदिक काल से माना जाता है। ये दोनों विधाएँ केवल कला या साधना मात्र नहीं, बल्कि मानव जीवन को शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक तथा नैतिक संतुलन प्रदान करने वाले सशक्त माध्यम हैं। भारतीय मनीषियों ने संगीत और योग को आत्मचिन्तन, आत्मशुद्धि तथा ब्रह्मानुभूति का पथ माना है। इस प्रकार दोनों का उद्देश्य मानव को आन्तरिक शान्ति, आत्मसाक्षात्कार और परम आनन्द की अनुभूति कराना है।

संगीत का मूल तत्त्व 'नाद' है, जो ब्रह्म का प्रतीक माना गया हैकृ"नाद ब्रह्म" की अवधारणा भारतीय संगीत–दर्शन का आधार है। इसी प्रकार योग का परम लक्ष्य 'अनाहत नाद' की अनुभूति तथा चित्तवृत्तियों का निरोध है। अतः नाद, प्राण तथा चेतनाकृये तीनों तत्व संगीत और योग के बीच गहरा सम्बन्ध स्थापित करते हैं। योग में प्राणायाम द्वारा श्वास को नियंत्रित कर मन को एकाग्र एवं शान्त किया जाता है, जबकि संगीत में स्वर, लय और नाद के माध्यम से मानसिक संतुलन एवं आध्यात्मिक अनुभूति प्राप्त होती है। इस प्रकार श्वसन क्रिया दोनों के बीच एक सेतु का कार्य करती है।

दार्शनिक दृष्टि से संगीत और योग दोनों ही मानव जीवन को आत्मिक उन्नति की ओर अग्रसर करते हैं, जबकि वैज्ञानिक एवं मनोवैज्ञानिक दृष्टि से ये मानसिक तनाव को कम कर एकाग्रता, भावनात्मक संतुलन तथा आन्तरिक शान्ति प्रदान करते हैं। नादोपासना, चक्र–जागरण तथा प्राण–नियमन की प्रक्रियाओं के माध्यम से साधक क्रमशः आत्मचेतना और आध्यात्मिक जागरण की ओर बढ़ता है।

अतः प्रस्तुत अध्याय में संगीत एवं योग के पारस्परिक सम्बन्ध का सैद्धान्तिक, दार्शनिक तथा वैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है, जिससे यह स्पष्ट हो सके कि संगीत और योग दो अलग मार्ग होते हुए भी अपने मूल तत्त्वोंकृनाद, प्राण और चेतनाकृके कारण

एक–दूसरे से अभिन्न रूप से जुड़े हैं। इन दोनों साधनाओं का समन्वय मानव जीवन को संतुलित, समृद्ध एवं आध्यात्मिक रूप से परिपूर्ण बनाने में सहायक सिद्ध होता है।

संगीत के शास्त्रीय स्वरूप का अध्ययन करते हुए सर्वप्रथम मुख्य तत्व है– 'श्रुति–स्वर'। श्रुति–स्वर व्यवस्था भारतीय संगीत की आधारशिला है और इन्हीं श्रुतियों पर आधारित स्वर जब एक साधक द्वारा मुखरित होते हैं तो योग के अनुसार हमारे सूक्ष्म शरीर में स्थित चक्र, नाड़ी, ग्रन्थि एवं अंग विषेष का भी इसमें सहयोग होता है। इस विषय की गहराई को एक सच्चा साधक ही अनुभव कर सकता है। परन्तु शास्त्रानुसार प्राचीन व आधुनिक काल में जो श्रुति–स्वर व्यवस्था स्थापित की गई उसका ज्ञान होना परमावष्यक है साथ ही प्राचीन व आधुनिक काल की श्रुति–स्वर व्यवस्था में जो अन्तर पाया जाता है व उनका यौगिक चक्र व्यवस्था से जो सम्बन्ध है उसका स्पष्टीकरण करना शोध विषय की दृष्टि से आवश्यक है।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :–

- संगीत एवं योग के पारस्परिक सम्बन्ध का सैद्धान्तिक तथा वैज्ञानिक विश्लेषण किस प्रकार से किया जाता है।
- इससे यह स्पष्ट है कि नाद, स्वर, श्रुति तथा प्राण की अवधारणा दोनों विधाओं में किस प्रकार समान आधार प्रस्तुत करती है।
- प्राचीन एवं आधुनिक श्रुति–स्वर व्यवस्था का अध्ययन कर उनका यौगिक चक्र व्यवस्था से सम्बन्ध समझना।
- नादोपासना, चक्र, नाड़ी तथा प्राणायाम की भूमिका को संगीत–साधना और योग–साधना में व्याख्यायित करना।

- श्वसन क्रिया (ठतमंजीपदह च्तवबमे) को संगीत एवं योग के सेतु के रूप में वैज्ञानिक दृष्टि से स्थापित करना।

1.3 संगीत का मानव जीवन में महत्व

संगीत और योग भारत में वैदिक काल से प्रचलित है। इन दोनों विधाओं का उल्लेख वेद, उपनिषद, दर्शन आदि में सामाजिक जीवन, कलासम्पन्न जीवन और आध्यात्मिक जीवन एकत्र रूप में जीने का मार्ग प्रषस्त करता है। भारतीय संगीत व योग वैदिक काल से ही आध्यात्मिक धरातल पर आसीन रहा है क्योंकि संगीत एवं योग दोनों को ब्रह्म–चिन्तन का साधन स्वीकार किया गया है।

भारतीय संगीत–शास्त्र के अनुसार संगीत–कला का घनिष्ठ सम्बन्ध योग–साधना के साथ माना गया है। संगीत एक नादात्मक विद्या है, उसी प्रकार योग भी है, क्योंकि जिस आहत या साकार शब्द की साधना संगीत में की जाती है, उसी का अनाहत या निराकार रूप योग–साधना का भी लक्ष्य है संगीत एवं योग ये दोनों विषय मुख्यतः क्रियात्मक है। वैज्ञानिक दृष्टिकोण से इन दोनों विषयों की गहराई में जाने पर स्पष्ट होता है कि इन दोनों विषयों को 'श्वास' नामक सेतु ने जोड़ रखा है। श्वसन क्रिया को विशिष्ट दिशा में दीक्षित करना, यही संगीत एवं योग का प्रथम कर्तव्य है।

संगीत कला भी एक योग है, जो सिद्धि योग–साधना से प्राप्त होती है, वही सिद्धि संगीत–साधना से भी प्राप्त होती है। योगी ध्यान तथा समाधि द्वारा ब्रह्म–नाद को प्राप्त करता है। इसी तरह संगीत–साधक संगीत में प्रयोग होने वाले तत्व स्वर–लय तथा नाद द्वारा अपने ध्यान को ईश्वर–उपासना में लगाता है तब वह अन्तर्मुखी हो जाता है। योग व संगीत दो अलग रास्ते हैं, परन्तु उनका उद्देश्य एक ही है – मोक्ष–प्राप्ति।

संगीत साधना आहत नाद की साधना पर आधारित है और योग साधना अनाहत नाद की साधना पर अवलम्बित है। दोनों ही विद्याएँ (संगीत–योग) नाद के दो भेदों से अन्तर्सम्बन्धित है इसीलिए नाद साधना को आत्मचेतना की जाग्रति तथा मोक्ष प्राप्ति की दृष्टि से आत्मशोधक, चित्तवृत्ति के निरोध, उपासना एवं ब्रह्म चिन्तन आदि के सन्दर्भ में

विशेष मान्यता दी गई है। 'हठयोग प्रदीपिका' में नादोपासना की चार अवस्थाएँ भी योगशास्त्रियों द्वारा बताई गई है–

1. आरम्भ : इस अवस्था में ब्रह्मग्रन्थि में प्राणवायु के प्रभाव से आनन्ददायक ध्वनि का अनुभव मानव करता है। यह ध्वनि आघात से उत्पन्न नहीं होती, अतः अनाहत नाद कहा जाता है।

2. घटावस्था : इस अवस्था में प्राणवायु के कण्ठ में स्थित विष्णु ग्रन्थि में आने पर नाद एवं बिन्दु परस्पर मिल जाते हैं।

3. परिचय : इस अवस्था में मस्तक पर दोनों भावों के बीच स्थित आग्न चक्र में प्राणवायु आ जाती है।

4. निष्पत्ति : इस अवस्था में प्राणवायु ब्रह्मरन्ध्र अर्थात् मस्तिष्क में पहुँचती है और ध्वनित होती है। इस अवस्था में आत्म–प्रकाश ही सर्वोपरि रह जाता है।

इस प्रकार नादोपासना के लिए निर्देशित उपरोक्त विवरण से ये पूर्णतः सिद्ध हो जाता है कि नाद साधना के रूप में संगीत एवं योग का अटूट सम्बन्ध है। संगीत और योग दोनों ही आध्यात्मिक, दार्शनिक, वैज्ञानिक व मनोवैज्ञानिक स्तर पर अन्तर्सम्बन्धित है। वस्तुतः संगीत का सम्बन्ध नाद से है और नाद का प्राणवहन से। जिस प्रकार योग में प्राणायाम अर्थात् 'प्राणों के आयाम' से चित्त शान्त होता है, उसी प्रकार संगीत यानि सांगीतिक नाद से भी चित्त शान्त होता है क्योंकि प्राण का मन तथा चित्त के साथ भी नजदीकी सम्बन्ध है। अतः स्पष्ट है कि नाद का चित्त से भी सम्बन्ध है। संगीत का महान गुण है कि वह चित्तवृत्तियों को शान्त तथा एकाग्र करता है। संगीत एक योग विद्या है जिसकी तीव्र से तीव्रतर ध्वनियाँ मनुष्य के सूक्ष्मतम स्नायु को झंकृत कर सुसुप्त कुण्डलिनी को जाग्रत कर देती है जिससे क्रमशः मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्ध व आज्ञा चक्रों का भेदन होता है। अन्त में सहस्त्रार तक पहुँच कर नाद में लीन हो जाना ही लक्ष्य प्राप्ति है। योगियों की भाषा में संगीत नादयोग है। नादोपासना योगषास्त्रों का प्रधान विषय रहा है जिसका निरूपण चक्रभेदन की प्रक्रिया के साथ हुआ है। नादोपासना में योगशास्त्र के उस शरीर विज्ञान को आधार माना गया है जिसमें मनुष्य के सूक्ष्म शरीर में दस चक्रों का होना

बताया गया है। चक्र मानव–शरीर में स्थित वे स्थान हैं जिन पर प्राणवायु को रोकने से परब्रह्म के साक्षात्कार करने के विभिन्न सोपानों की प्राप्ति होती है।

1.4 संगीत का मानव जीवन में सामाजिक महत्व

संगीत मानव समाज की सामूहिक चेतना का सशक्त माध्यम है। यह व्यक्ति को समाज से जोड़ता है और सामाजिक जीवन को संतुलन, सौहार्द और एकता प्रदान करता है। सामाजिक दृष्टि से संगीत केवल मनोरंजन का साधन नहीं, बल्कि सामाजिक मूल्यों, परंपराओं और मानवीय संबंधों को सुदृढ़ करने वाला तत्व है। संगीत विभिन्न वर्गों, जातियों और समुदायों को एक सूत्र में बाँधता है। सामूहिक गायन, लोकगीत, भजन, कीर्तन और राष्ट्रीय गीत सामाजिक एकता की भावना को प्रबल करते हैं। जन्म, विवाह, उत्सव, पर्व, धार्मिक अनुष्ठान और अंतिम संस्कार जैसे सामाजिक अवसरों पर संगीत अनिवार्य रूप से जुड़ा होता है। यह सामाजिक परंपराओं को जीवंत बनाए रखता है। संगीत के माध्यम से प्रेम, करुणा, वीरता, भक्ति और उल्लास जैसी सामाजिक भावनाओं की अभिव्यक्ति होती है। यह समाज के सामूहिक अनुभवों को स्वर देता है। सांस्कृतिक संरक्षण और पीढ़ीगत संवाद से लोक–संगीत और पारंपरिक गीतों के माध्यम से संस्कृति, इतिहास और सामाजिक मूल्य एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचते हैं। संगीत सामाजिक तनाव, हिंसा और मानसिक अशांति को कम करने में सहायक है। यह समाज में सहिष्णुता और मानवीय संवेदनाओं को बढ़ाता है। श्रमगीत, लोकधुनें और सामूहिक वादन कार्यस्थलों पर ऊर्जा, सहयोग और उत्साह उत्पन्न करते हैं, जिससे सामाजिक सहयोग बढ़ता है।

राष्ट्रभावना और सामाजिक चेतना देशभक्ति गीत, राष्ट्रीय गान और प्रेरक रचनाएँ समाज में राष्ट्रप्रेम, कर्तव्यबोध और सामाजिक उत्तरदायित्व की भावना विकसित करती हैं। संगीत सामाजिक भेदभाव को कम करता है और समावेशी समाज के निर्माण में सहायक होता है।

1.5 संगीत का मानव जीवन में मनोवैज्ञानिक महत्व

संगीत मानव मन और मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव डालने वाली कला है। यह भावनाओं, विचारों और व्यवहार को संतुलित कर मानसिक स्वास्थ्य को सुदृढ़ बनाता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से संगीत न केवल मनोरंजन है, बल्कि एक प्रभावी उपचारात्मक और विकासात्मक माध्यम भी है। संगीत के माध्यम से व्यक्ति अपने हर्ष, विषाद, प्रेम, करुणा, क्रोध और उल्लास जैसी भावनाओं को सहज रूप से व्यक्त कर सकता है। इससे भावनात्मक दमन कम होता है। संगीत तनाव, चिंता और अवसाद को कम करने में सहायक होता है। मधुर और शांत संगीत मन को शांति प्रदान करता है और मानसिक संतुलन बनाए रखता है। संगीत मस्तिष्क की सक्रियता बढ़ाता है, जिससे स्मरण शक्ति, ध्यान और एकाग्रता में वृद्धि होती है। विद्यार्थियों के लिए यह विशेष रूप से लाभकारी है। गायन, वादन और ताल अभ्यास से व्यक्ति में आत्मविश्वास बढ़ता है और आत्म–अभिव्यक्ति की क्षमता विकसित होती है। संगीत–चिकित्सा का प्रयोग मानसिक रोगों, अनिद्रा, तनाव और भावनात्मक विकारों के उपचार में किया जाता है। संगीत अनुशासन, धैर्य, संवेदनशीलता और रचनात्मकता को बढ़ाता है, जिससे संतुलित व्यक्तित्व का निर्माण होता है। बाल्यावस्था में संगीत सीखने से भावनात्मक स्थिरता, सामाजिक व्यवहार और बौद्धिक विकास होता है।

संगीत वृद्ध व्यक्तियों को मानसिक शांति, स्मृतियों के संचार और एकाकीपन से मुक्ति दिलाने में सहायक होता है। संगीत मानव सभ्यता की प्राचीन धरोहर है। भारत में वैदिक परंपरा, सामवेद, लोक–संगीत और शास्त्रीय संगीत ने सांस्कृतिक निरंतरता बनाए रखी है। समय के साथ अनेक विधाएँ विकसित हुईं, कुछ विस्मृत हुईं, पर संगीत की केंद्रीय भूमिका बनी रही। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से संगीत मानव मस्तिष्क और भावनाओं पर गहरा प्रभाव डालता है। यह मानसिक संतुलन, तनाव–नियंत्रण और सकारात्मक व्यवहार को बढ़ावा देता है। संगीत मानव मन का स्वाभाविक आहार है, जो भावनात्मक अभिव्यक्ति और आंतरिक शांति प्रदान करता है।

1.6 संगीत का मानव जीवन में सांस्कृतिक महत्व

संगीत मानव संस्कृति का अभिन्न और जीवंत अंग है। यह किसी भी समाज की परंपराओं, मान्यताओं, जीवन–शैली और सांस्कृतिक पहचान को अभिव्यक्त करता है। आदिम युग से आधुनिक युग तक संगीत ने सांस्कृतिक निरंतरता बनाए रखने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। किसी भी समाज या राष्ट्र की सांस्कृतिक पहचान उसके संगीत में सुरक्षित रहती है। लोक–संगीत, शास्त्रीय संगीत और धार्मिक संगीत उस समाज की आत्मा को प्रतिबिंबित करते हैं। विवाह गीत, संस्कार गीत, पर्व–त्योहारों के गीत और लोकधुनें पीढ़ी–दर–पीढ़ी सांस्कृतिक परंपराओं को जीवित रखती हैं। लोक–संगीत जनजीवन, श्रम, प्रकृति और सामाजिक अनुभवों से जुड़ा होता है। यह स्थानीय संस्कृति और भाषा के संरक्षण में सहायक है। भजन, कीर्तन, सूफी संगीत, गुरबाणी और स्तुति–गान धार्मिक एवं आध्यात्मिक संस्कृति को सुदृढ़ करते हैं और आस्था को गहराई प्रदान करते हैं। संगीत विभिन्न संस्कृतियों के बीच संवाद स्थापित करता है। भारतीय संगीत में विविधता होते हुए भी एकता का भाव दिखाई देता है। नृत्य, संगीत समारोह, सांस्कृतिक महोत्सव और मेलों में संगीत सामूहिक आनंद और सांस्कृतिक चेतना को बढ़ाता है। प्राचीन ग्रंथों, रागों और परंपराओं के माध्यम से संगीत इतिहास और संस्कृति की अमूल्य धरोहर को सुरक्षित रखता है।

1.7 प्राचीन श्रुति स्वर चक्र व्यवस्था :

सर्वप्रथम प्राचीन श्रुति–स्वर व्यवस्था एवं उनका चक्र व्यवस्था से सम्बन्ध की व्याख्या का निरूपण किया जा रहा है – एक सप्तक में आने वाली श्रुतियों की संख्या के विषय में 22 श्रुतियाँ होने का सिद्धान्त सर्वप्रथम भरतमुनि ने अपने ग्रन्थ 'नाट्यषास्त्र' में उल्लेख किया है, परन्तु उनके समय में श्रुति एवं स्वर के कार्य–कारणादि पर कोई स्पष्ट उल्लेख प्राप्त नहीं होता। परवर्त्ती ग्रन्थ मतंगकृत 'वृहद्देषी' में मतंग के काल तक जितने भी मत रहे, उन सभी का उल्लेख प्राप्त होता है। एक से लेकर 66 प्रकार की श्रुतियों का उल्लेख 'वृहद्देषी' ग्रन्थ में मिलता है। महर्षि भरत द्वारा बताई गई 22 श्रुतियों को ही सभी परवर्ती शास्त्रकारों ने स्वीकारा है, इसी क्रम में शारंगदेव ने श्रुतियों का एक अन्य प्रकार से भी विचार प्रकट किया है, जो इस प्रकार है –

तस्य द्वाविंषतिर्भेदाः श्रवणाच्छ्रुतयो मताः ।

हृद्यूर्ध्वनाडीसंलग्ना नाड्यो द्वाविंषतिर्मताः ।।8।।

तिरष्च्यस्तासु तावत्यः श्रुतयो मारूताहतेः ।

उच्चोच्चतरतायुक्ताः प्रभवन्त्युत्तरोत्तरम् ।।9।।

एवं कण्ठे तथा शीर्षे श्रुतिद्वाविंषतिर्मता ।

(संगीत रत्नाकर 1/3/8–10)

अर्थात् – 'हृदयस्थान और ऊर्ध्वनाड़ी से लगी हुई 22 तिरछी नाड़ियाँ हैं जो भीतर से खोखली होने के कारण वायु से भरी रहती है। उस वायु पर आघात होने से ध्वनि उत्पन्न होती है। इन नाड़ियों में से पहली नाड़ी से उत्पन्न ध्वनि की अपेक्षा दूसरी की ध्वनि उच्चतर होती है और इसी प्रकार क्रमषः अगली–अगली नाड़ियों में ध्वनि उच्चतर होती जाती है। इन नाड़ियों से उत्पन्न 222 ध्वनियाँ मन्द्रस्थान की होती है और इसी प्रकार मध्य और तार स्थान में भी 22–22 ध्वनियाँ उत्पन्न होती है। नाड़ियों की संख्या 22 ही है जो हृदय में स्थित है उनसे मूलतः मन्द्रस्वर उत्पन्न होते हैं। मध्य और तार स्वरों का सम्बन्ध इन नाड़ियों से नहीं जोड़ा है। परन्तु कल्लिनाथ ने एक अन्य श्लोक की व्याख्या में बताया है कि प्रयत्न भेद से मध्य–तार नाद उसी प्रकार समझे जा सकते हैं जिस प्रकार वंषी के उन्हीं छिद्रों से, वायु के आघात–भेद से तीनों स्थानों की ध्वनियाँ उत्पन्न होती है। कल्लिनाथ ने ऊर्ध्वनाड़ी का अर्थ इड़ा–पिंगला नाड़ियों से लगाया है। आयुर्वेद में नाडी शब्द बड़ा व्यापक है। चरक, सुश्रुत आदि ने इडा–पिंगला जैसी सूक्ष्म अदृष्य नाड़ियों के लिए भी इस शब्द का प्रयोग किया है और 'ऍनॅटॉमी' के तजमतलए बंचपससंतलए अमपद और दमतअम जैसे स्थूल दृष्य अवयव भी 'नाड़ी' में समाहित हैं। प्रस्तुत सन्दर्भ में नाड़ी शब्द सूक्ष्म अर्थ में ही प्रयुक्त हुआ है। आधुनिक 'एनॅटॉमी' इन 22 नाड़ियों के अस्तित्व को पुष्ट नहीं कर सका है, क्योंकि सुशुम्ना से संलग्न ऐसी कोई दृष्य नाड़ियाँ नहीं है जिनसे 22 नाद उत्पन्न होते हों। यह सारा विषय योग–तन्त्र के क्षेत्र का है जहाँ इडा–पिंगला और अन्य नाडियों की चर्चा की गई है। यह बात सर्वविदित है कि संगीतज्ञों द्वारा एक सप्तक में सात स्वर तथा पाँच उपस्वर माने गये हैं जो उस सप्तक के 22 श्रुति–खण्डों के बीच स्थित है। ये स्वर तथा श्रुतियाँ हमारे शरीर के विभिन्न चक्रों एवं ग्रन्थियों से निःसरित होकर कण्ठ स्थित मूर्धा, तालु, जिह्वा तथा ओष्ठ आदि से होकर साकार रूप में मुख से

उच्चारित होते हैं जिसका संकेत पण्डित 'अहोबल' कृत 'संगीत–पारिजात' (द्वितीय संस्करण–1956, पृ. 09) के निम्नांकित श्लोक से मिलता है –

''हृद्यूर्ध्वनाडिकास्वद्वाविंषत्यणुतिरोजनाड़ीषु
तावन्तः श्रुतिसंज्ञाः स्युर्नादाः परपराच्चोच्चा ।।

अर्थात् – हृदय की ऊर्ध्व स्थिति में तीन नाड़ियों (इडा, पिंगला तथा सुषुम्ना) के संयोग से 22 ग्रन्थियाँ निर्मित है, जिनमें 22 श्रुतियाँ निःसरित होती है। ये श्रुति अथवा नाद एक दूसरे से ऊँचा होते चले गये हैं। `

'ऊर्ड्घस्थितत्रिनाडीषु नाड्यस्तिर्य्यग्हृदि स्थिताः ।
द्वाविंषतिमिताष्चेति प्राचीनर मनुयोऽब्रुवन् ।।

हृदय के ऊपरी भाग में तीन नाड़ियाँ है। उनमें ही सम्मिलित तिरछी गई हुई 22 नाड़ियाँ और है, ऐसा पुराने मुनियों ने कहा है। उपर्युक्त श्लोकों से यह स्पष्ट हो गया है कि हमारे शरीर के किसी स्थान विशेष पर स्थित 22 ग्रन्थियों से ही 22 श्रुतियों का उद्भव होता है। योग के अनुसार ये 22 ग्रन्थियाँ मानवीय सूक्ष्म शरीर में वास करती है। जिन लोगों ने क्रियात्मक रूप से योगसाधना की है वे इस तथ्य को जानते हैं कि हमारे शरीर में मेरूखण्ड है जिनमें 22 मेरूखण्ड ;टमतजमइतेंद्ध मुख्य रूप से उद्भाषित है और हमारे शरीर के इन्हीं मेरूखण्डों में इडा, पिंगला तथा सुषुम्ना नाड़ियों के संयोग ;ब्तवेपदहद्ध से षट्चक्रों का निर्माण हुआ है। महर्षि भरत के समय से ही 22 श्रुतियों को मुख्य सात स्वरों में बाँटा गया है। इस श्रुति–स्वर विभाजन के अन्तर्गत – षड्ज, मध्यम और पंचम स्वरों के लिए चार–चार श्रुतियाँ, ऋषभ और धैवत के लिए तीन–तीन श्रुतियाँ एवं गान्धार और निषाद के लिए दो–दो श्रुतियाँ निष्चित करने का सिद्धान्त सभी विद्वानों को मान्य रहा है। इस प्रकार सप्तक के सात स्वरों – सा, रे, ग, म, प, ध और नि में 4, 3, 2, 4, 4, 3, 2 श्रुतियों के अन्तर स्थापित किए गए। अतः एक स्वर से दूसरे स्वर के बीच कम से कम दो श्रुति और अधिक से अधिक चार श्रुतियाँ हो सकती है। प्राचीन एवं मध्यकालीन विद्वानों ने स्वरों को उनकी अन्तिम श्रुति पर स्थापित करने के सिद्धान्त को मान्यता दी थी। इस कारण प्रत्येक स्वर अपनी अन्तिम श्रुति पर स्थापित हुआ, जैसे – सा के लिए चौथी श्रुति,

रे के लिए सातवीं श्रुति, ग के लिए नवीं श्रुति, म के लिए तेरहवीं श्रुति, प के लिए सत्रहवीं श्रुति, ध के लिए बीसवीं एवं नि के लिए बाईसवीं श्रुति निष्चित की गई। यथा –

1.7.1. श्रुति क्रम श्रुति नाम स्वर सप्तक स्थान–

1. तीव्रा
2. कुमुद्वति
3. मन्दा
4. छनदोवती षड्ज
5. दयावती
6. रंजनी
7. रक्तिका ऋषभ
8. रौद्री
9. क्रोधा गान्धार
10. वज्रिका
11. प्रसारिणी
12. प्रीति

13. मार्जनी मध्यम

14. क्षिति

15. रक्ता

16. सन्दीपणी

17. आलापिणी पंचम्

18. मदन्ती

19. रोहिणी

20. रम्या धैवत

21. उग्रा

22. क्षोभिणी निषाद

महर्षि भरत ने अपने ग्रन्थ 'नाट्यषास्त्र' में सर्वप्रथम सारणा–विधि द्वारा यह प्रमाणित किया कि सप्तक में 22 श्रुतियाँ होती है। सारणा–प्रक्रिया केसम्बन्ध में भरत का समर्थन करने वालों में पं शारंगदेव एवं मतंग मुनि का नाम उल्लेखनीय है। इसी सन्दर्भ में मध्यकालीन ग्रन्थकार पं अहोबल कृत 'संगीत पारिजात' का एक श्लोक उद्धृत किया गया है, जो इस प्रकार है :–

पूर्व नाभिस्ततो हत स्यात् पंचात्कंठः प्रकीर्तितः
अथ मूर्द्धा तथास्यं स्यादिति स्थानानि मेनिरे ।।

अर्थात् – सर्वप्रथम प्राकृतिक रूप से स्वरों की उत्पत्ति नाभि से प्रारम्भ होकर हृदय फिर कण्ठ, मस्तक, मुख यह पांच स्थान माने गये हैं। अतः नाद शब्द में 'नकार' प्राणबीज तथा 'दकार' अग्नि का द्योतक है अर्थात् नाद की उत्पत्ति नाभिस्थान में प्राणवायु एवं अग्नि के संयोग से उत्पन्न उत्तेजना विशेष द्वारा होती है।

इसी प्रकार एक अन्य श्लोक भी उद्धरणीय है –

नाभेरूर्ध्वहृदिस्थानान्मारूतः प्राणसंज्ञकः ।

नदति ब्रह्मरन्ध्रान्ते तेन नादः प्रकीर्त्तितः ।।

अर्थात् – नाद की उत्पत्ति सर्वप्रथम नाभि (अर्थात् 'मणिपूर चक्र') के स्थान से होती है। यहाँ से वह स्वर–ऊर्जा के रूप में ऊर्ध्वगमन करते हुए हृदय के स्थान (अनाहत चक्र) पर पहुँचकर 'मारूत' अर्थात् वायु से समागम करते हुए ऊपर उठकर 'ब्रह्मरन्ध्र' को झंकृत करता है जिसे 'प्राकृत नाद' कहते हैं। सम्भवतः यह कहा जा सकता है कि प्राचीन श्रुति–स्वर व्यवस्थानुसार संगीत के प्रथम स्वर षड्ज का उद्गम स्थान नाभि की ठीक सीध में विद्यमान चौथे मेरूखण्ड अर्थात् 'चौथी श्रुति' पर स्थित है। संगीत रत्नाकर में योग का निरूपण इस प्रकार किया गया है – ''गुदा से दो अंगुल ऊपर, लिंग से दो अंगुल नीचे, शरीर की सर्व नाड़ियों का मूल है, इस स्थान को मूलाधार कहते हैं। यहाँ पर प्रथम चक्र है। इसे आधार पद्म कहते हैं। यह चर्तुदल है। इसी चक्र पर नाड़ियों के झुण्ड में घिरकर कुण्डलिनी साढ़े तीन लपेटा दिये हुए सुषुम्ना नाड़ी के छिद्र को घेरे पड़ी है। यह कुण्डलिनी अपने तेज से ही प्रकाषित होती रहती है। इस कुण्डलिनी देवी के जाग्रत होने पर ही सहजानन्द प्राप्त होता है, जो अनिर्वचनीय महदानन्द है। कुण्डलिनी ब्रह्मा शक्ति है और यही देवी संगीत की उपास्य भगवती सारदा (सरस्वती) है।'' इसीलिए ग्रन्थों में योगसाधना का मार्ग बताया गया है। योग के अनुसार हमारे सूक्ष्म शरीर में चक्रों का स्थान एवं उनसे सम्बन्धित आवष्यक जानकारी प्रस्तुत शोध प्रबन्ध में पूर्व में ही दी जा चुकी है। इस विषय पर पं राजकिषोर प्रसाद सिन्हा ने अपनी पुस्तक 'संगीत एवं योग साधना द्वारा आत्मसाक्षात्कार' में प्राचीन श्रुति–स्वर व्यवस्थानुसार सूक्ष्म शरीर में षड्ज सहित अन्य छः स्वरों के उद्गम स्थान निम्नलिखित बताये हैंः–

1. षड्ज (सा) की आधारशिला चौथी श्रुति स्थित 'छंदोवती' पर हुई। संगीत–विज्ञान के अनुसार षड्ज का रंग गुलाबी कहा गया है। षड्ज का उद्गम स्थान 'मणिपूर चक्र' है।

2. ऋषभ (रे) सातवीं श्रुति पर स्थित है जिसका नाम 'रतिका' है। यह मणिपूर तथा अनाहत चक्रों के बीच सातवें मेरूखण्ड पर स्थित है। शास्त्रों के अनुसार इसका रंग हरा–पीला मिला हुआ है।

3. गन्धार (ग) यह नौवीं श्रुति पर स्थित है, जिसका नाम 'क्रोधा' है। हमारे मेरूदण्ड में यह नौवें मेरूखण्ड पर होने के कारण 'अनाहत चक्र' पर स्थित है। इसका रंग स्वर्ण अर्थात् नारंगी के समान है।

4. मध्यमा (म) यह नाट्यषास्त्र के अनुसार तेरहवीं श्रुति 'मार्जनी' पर होने के कारण अनाहत चक्र के ऊपर तेरहवें मेरूखण्ड पर स्थित है। इसका रंग पीला–गुलाबी मिला हुआ है।

5. पंचम (प) यह सत्रहवीं श्रुति अर्थात् 'आलापनी' पर होने के कारण विषुद्ध चक्र के ठीक ऊपर सत्रहवें मेरूखण्ड पर स्थित है। इसका रंग लाल है।

6. धैवत (ध) यह बींसवीं श्रुति 'रम्या' पर विषुद्ध चक्र के और भी ऊपर बीसवें मेरूखण्ड पर मूदर्धा के ठीक सामने स्थित है। इसका रंग पीला है।

7. निषाद (नि) यह बाईसवीं श्रुति 'क्षोभिनी' पर स्थित है – अर्थात् यह बाईसवें और अन्तिम मेरूखण्ड पर है जो 'आज्ञाचक्र' के नीचे वाले दल के समीप है। यह स्वर नासिका के ऊपरी भाग की सीध में है। इसका रंग भी लाल ही है जो पंचम से भिन्न है। भारतीय संगीत के सप्त स्वरों के सात वर्ण भी माने गये है। यह कल्पना किसी भी संगीत प्रणाली में नहीं है क्योंकि उन्होंने जगत–व्यवहार के अन्यान्य सत्यों का अनुभव नहीं किया। योगषास्त्र अथवा विज्ञान द्वारा ही वास्तविक अनुभव प्राप्त हो सकते हैं। संगीत मार्तण्ड पं. ओंकारनाथ जी ठाकुर ने 1954 में विष्व शान्ति परिषद् के वार्षिक अधिवेषन में भारत का प्रतिनिधित्व जर्मनी में किया था। इस अवसर पर पण्डित जी ने वैज्ञानिकों की उपस्थिति में रासायनिक द्रव से रंगे पर्दे पर अपनी स्वर शक्ति से सात रंगों का सृजन किया था। जिस प्रकार सूर्य की रष्मियों में सात रंग है, उसी प्रकार सात स्वरों के भी सात रंग हैं। हमारे ऋषियों ने श्रृंगारादि रसों के सात रंग निष्चित किये थे। यहाँ यह प्रमाणित होता है कि हमारी इस विधा को भी ऋषि–मुनियों ने दैवी–षक्ति सम्पन्न माना है। तभी ध्वनि शक्ति का प्रकाश–शक्ति में परिणति का दृष्टान्त मिलता है। नाद और वर्ण का अन्योन्याश्रित सम्बन्ध है। भारतीय मनीषियों का मत है कि संगीत कला में श्रुतिगत स्वर साधना से स्वरों के रंग साधक को दिखाई देने लगते हैं। परन्तु इसके लिए संगीत साधक को सर्वप्रथम स्वर–साधना द्वारा नाड़ी शुद्धि आवष्यक है और नाड़ी शुद्धि के लिए प्रथम मूलाधार चक्र

स्थित कुण्डलिनी शक्ति को जाग्रत करना परम आवष्यक माना जाता है। जिससे स्वरों के सही स्थान प्राप्त होते हैं।

यहाँ यौगिक चक्रों के सम्बन्ध में भी एक महत्वपूर्ण बात स्मरण रखने योग्य है कि ये चक्र हमारे स्थूल शरीर में न होकर सूक्ष्म शरीर में स्थित है। हमारे शरीर के साथ इन सूक्ष्म चक्रों का घनिष्ठ सम्बन्ध है परन्तु साथ ही यह कहना भी आवष्यक है कि शरीर को काटने पर यह चक्र प्रत्यक्ष नहीं होंगे क्योंकि जिस प्रकार मस्तिष्क का ऑपरेषन करने पर उसमें विचार नहीं मिल सकते, उसी प्रकार शरीर को काटने पर या रीढ़ की हड्डी को काटने पर चक्र, उनके रंग व देवी–देवता कुछ भी प्रत्यक्ष नहीं हो सकते क्योंकि सूक्ष्म चक्रों का आधार शरीर में स्थित नाड़ियाँ और ग्रन्थियाँ है तथा एक योगी तपस्वी और साधक ही इन चक्रों को देख सकता है व अनुभव कर सकता है। 'संगीत रत्नाकर' में पं शारंगदेव ने शरीर में ध्वनि की उत्पत्ति की प्रक्रिया में दस चक्रों का विषिष्ट आधार माना है –

1. आधार चक्र 2. स्वाधिष्ठान चक्र 3. मणिपूर चक्र 4. अनाहत चक्र 5. विषुद्धि चक्र 6. ललना चक्र 7. आज्ञा चक्र 8. मनस चक्र 9. सोम चक्र 10. सुधाकर चक्र।

1. आधार या मूलाधार चक्र – यह गुदा और लिंग के बीच में स्थित होता है। परापक्ति अथवा कुण्डलिनी शक्ति का विश्रामस्थल, अष्टांग योगसाधना के माध्यम से यही शक्ति वायु के रूप में प्रेरित व उत्थित होती है।

2. स्वाधिष्ठान चक्र – मूलाधार चक्र के ऊपर लिंग के मूल में स्वाधिष्ठान चक्र स्थित होता है।

3. मणिपूर चक्र – यह नाभि में स्थित होता है।

4. अनाहत चक्र – यह हृदय में स्थित होता है।

5. विषुद्धि चक्र – यह कण्ठ में स्थित होता है।

6. ललना चक्र – इसकी स्थिति जिह्वा के अन्तिम छोर पर होती है।

7. आज्ञा चक्र – इस चक्र का स्थान भौहों के बीच में होता है।

8. मनस चक्र – आज्ञा चक्र के आगे मस्तिष्क की ओर स्थित होता है।

9. सोम चक्र – मनस चक्र का ही दूसरा भाग सोम चक्र है।

10. सुधाधर चक्र – इसकी स्थिति ब्रह्मरन्ध्र में होती है।

इसी प्रकार मध्यकालीन ग्रन्थकार दामोदर पण्डित ने भी अपने ग्रन्थ 'संगीत दर्पण' में शरीर में इन्हीं दस चक्रों का आधार स्वीकार किया है। इसी सन्दर्भ में अहोबलकृत 'संगीत पारिजात' में भी हृदय स्थित 'अनाहत चक्र', कण्ठ में 'विषुद्ध चक्र' व मस्तक में 'सहस्त्रार' नामक चक्र का आधार माना है।

इस प्रकार उपरोक्त चक्रों के माध्यम से वायु उत्थित होकर नाद की उत्पत्ति का कारण बनती है और समस्त चक्रों के प्रभाव से विषिष्ट प्रयोजनीयता से परिपूरित होती है। नाद उत्पत्ति एवं चक्र व्यवस्था का यह प्राचीन अध्ययन जितना दार्शनिक, सूक्ष्म और पूर्ण है, उतना ही वैज्ञानिक भी है।

1.7.2.आधुनिक श्रुति–स्वर–चक्र व्यवस्था :

आधुनिक काल 19वीं शताब्दी से माना जाता है। इस काल में दो महान व्यक्तियों ने संगीत के क्रियात्मक ज्ञान तथा संगीतषास्त्र के पुनर्निर्माण का कार्य प्रारम्भ कर इसे नवजीवन प्रदान किया। इन दोनों महान विभूतियों का नाम 'पं विष्णुदिगम्बर पलुस्कर' तथा 'पं विष्णुनारायण भातखण्डे' है। इनके अतिरिक्त उसी कालावधि में 'आचार्य बृहस्पति' नामक महान संगीतविद् भी हुये जिन्होंने प्राचीन संगीत साहित्य का गहन अध्ययन, मनन एवं चिन्तन करने के पश्चात् संगीत जगत को अनेक महत्वपूर्ण ग्रन्थों की अमूल्य निधि प्रदान की। आधुनिक श्रुति–स्वर व्यवस्था में एक सप्तक में 22 श्रुतियाँ ही मानी गई है। पं भातखण्डे ने प्राचीन श्रुति–स्वर विभाजन के मानदण्ड इस प्रकार हैं–

''चतुष्चतुष्चैवषड्जमध्यम पंचमः।
द्वै द्वै निषाद गन्धारः त्रिस्त्रीः ऋषभ धैवतः।।''

को ही स्वीकार किया है परन्तु 'षड्ज या सा' को चौथी श्रुति अर्थात् 'छन्दोवती' के बजाय प्रथम श्रुति 'तीव्रा' पर स्थापित माना। तदोपरान्त उन्होंने अन्य शेष सभी छः स्वरों को षड्ज के समान ही उनके पूर्ववर्ती अर्थात् प्रथम श्रुति पर स्थापित किया। इसके परिणामस्वरूप सबसे बड़ा अन्तर यह हुआ कि पण्डित विष्णु नारायण भातखण्डे जी का शुद्ध सप्तक काफी थाट के स्थान पर शुद्ध थाट बिलावल हो गया। सम्भवतः स्वर को उसकी प्रथम श्रुति पर स्थित करने का विचार पाश्चात्य विचारधारा से प्रेरित है। अतः आधुनिक विद्वान पं भातखण्डे ने षड्ज स्वर को प्रथम श्रुति (तीव्रा), ऋषभ को पांचवी श्रुति (दयावती), गन्धार

को आठवीं श्रुति (रौद्री), मध्यम को दसवीं श्रुति (वज्रिका), पंचम को चौदहवीं श्रुति (क्षिति धैवत को अठारहवीं श्रुति (मदन्ती) व निषाद को इक्कीसवीं श्रुति (उग्रा) पर स्थापित किया। तात्पर्य यह है कि पहले स्वर रखे गए, तत्पष्चात् उनकी श्रुतियाँ। शुद्ध स्वर 1,5,8,10,14,18,21 क्रमांक्र श्रुतियों पर है, यथा –

1 2 3 4 5 6 7 8 9 10 11 12 13 14 15 16 17 18 19 20 21 22

सा रे ग म प ध नि सम्भवतः इनका विचार रहा होगा कि 'षड्ज' तो मूल ध्वनि है, उससे पूर्व तीन श्रुतियों का अस्तित्व असम्भव है, फलतः षड्ज इत्यादि शुद्ध स्वरों की शुद्धावस्था उनकी प्रथम श्रुति पर मानना चाहिए। प्रसंगतः यह उल्लेखनीय है कि प्राचीन ग्रन्थकारों ने 22 श्रुतियों पर स्वरों की स्थापना करते हुए विभाजित श्रुतियों में से अन्तिम श्रुति पर स्वर की स्थापना की। जिसके कारण तत्कालीन शुद्ध मेल 'काफी' के समकक्ष था परन्तु अधुनाकालीन ग्रन्थकारों ने स्वर की स्थापना प्रथम श्रुति पर करके हिन्दुस्तानी शास्त्रीय संगीत का शुद्ध थाट 'बिलावल' माना साथ ही श्रुति–स्वर व्यवस्था के परिवर्तन से चक्र व्यवस्था में भी स्वतः ही परिवर्तन आ गया।

1.8 आधुनिक हिन्दुस्तानी (उत्तर भारतीय) संगीत शैलीः

आधुनिक संगीत शैली की नई विचारधारा का सूत्रपात 'पं विष्णु नारायण भातखण्डे' ने किया। इन्होंने प्राचीन शैली में स्थापित 22 श्रुतियों से जनित ग्राम, मूर्छना तथा राग–रागिनी पद्धति के स्थान पर एक नवीन शैली का निर्माण किया। इस नवीन शैली के अन्तर्गत आधुनिक श्रुति–स्वर विभाजन की प्रक्रिया सहित राग–रागिनी पद्धति के स्थान पर थाट–राग पद्धति को स्थापित किया गया। अतः उत्तर भारतीय (हिन्दुस्तानी) संगीत की आधुनिक आधारषिला पं.भातखण्डे द्वारा प्रतिपादित बारह स्वरों तथा उपस्वरों पर आधारित दस थाटों के अन्तर्गत व्यवहृत है।

इस प्रकार पं राजकिषोर प्रसाद सिन्हा द्वारा आधुनिक श्रुति–स्वर व्यवस्था को परखने हेतु प्रसंगाधीन 'संगीत–योग साधना चित्र' के मेरूदण्ड तथा मेरूखण्डों के पिछले भाग में स्थापित किया गया। जिसकी स्थिति निम्नांकित बनती है –

1.8.1 क्रमांक स्वर श्रुति संख्या एवं नाम चक्र नाम

1. 'सा' प्रथम श्रुति (तीव्रा) मूलाधार या गुदा चक्र
2. 'रे' पांचवीं श्रुति (दयावती) मणिपूर चक्र के ठीक ऊपर
3. 'ग' आठवीं श्रुति (रौद्री) अनाहत चक्र के ठीक नीचे
4. 'म' दसवीं श्रुति (वज्रिका) अनाहत चक्र के ठीक ऊपर
5. 'प' चौदहवीं श्रुति (क्षिति) अनाहत चक्र तथा विषुद्ध चक्र के बीच
6. ध' अठारहवीं (मदन्ती) विषुद्ध चक्र के ठीक ऊपर
7. 'नि' इक्कीसवीं श्रुति (उग्रा) आज्ञा चक्र के नीचे

इस प्रकार उपर्युक्त चित्र के मेरूखण्डों पर सप्त स्वरों को स्थापित करने पर जो परिणाम निकलता है, उससे यह ज्ञात होता है कि प्रथम स्वर 'षड्ज' या 'सा' की स्थापना मूलाधार अर्थात् 'गुदा चक्र' स्थित प्रथम श्रुति पर होती है।

1.9 संगीत एवं योग का आधार स्तम्भ श्वसन क्रिया

संगीत एवं योग प्रारम्भ से ही अत्यन्त व्यापक विषय रहे हैं और आधुनिक समय में संगीत एवं योग अत्यन्त व्यापक तथा बहुप्रचलित शब्द हो गये हैं। संगीत एवं योग साधना दोनों ही मुख्य रूप से क्रियात्मक हैं। इन दोनों साधनाओं को जोड़ने वाली प्रथम कड़ी नाद है जिसका पूर्व में विस्तृत विवेचन किया गया है। संगीत एवं योग प्रथमतः एक जीवन दर्षन है इनका उद्देश्य मानव जीवन को परमानन्द की प्राप्ति कराना है। परन्तु वैज्ञानिक दृष्टि से 'श्वसन क्रिया' संगीत एवं योग साधना में मुख्य अंग है। अतः शोधकर्त्री द्वारा संगीत एवं योग साधना को वैज्ञानिक दृष्टिकोण से समझने का प्रयत्न किया गया है जिसका विवेचन इस प्रकार है –

संगीत में श्वास ही स्वर को उत्पन्न करने का प्रमुख साधन है। इसी प्रकार योग में श्वास का नियम ही प्राणायाम है। अर्थात् चित्त की वृत्तियों पर नियन्त्रण प्राप्त करने के लिए प्राणायाम श्वास के नियमन से आरम्भ किया जाता है। इससे स्पष्ट होता है कि श्वसन क्रिया ही वह सेतू है जो दोनों विद्याओं को आपस में जोड़ता है। यह पहले भी बताया गया है श्वसन क्रिया में दोनों ही क्रियाएँ अर्थात् ऑक्सीजन ग्रहण करने तथा कार्बनडाईऑक्साइड निकालने की क्रियाएँ सम्मिलित होती है, यह दोनों क्रियाएँ अलग–अलग नामों से जानी जाती हैं। श्वास लेने अर्थात् ऑक्सीजन ग्रहण करने की क्रिया श्वसन तथा कार्बनडाईऑक्साइड बाहर छोड़ने की क्रिया निःष्वास या प्रष्वास कहलाती है। श्वसन क्रिया को मानव की मानसिक स्थिति बहुत प्रभावित करती है। विश्राम करते समय इसकी गति कम हो जाती है जबकि क्रोध, भय या दौड़ते समय यह बढ जाती है। इसीलिए एक संगीत साधक को श्वास–नियन्त्रण जैसे विषय में अधिक जागरूक होना चाहिए।

1.10 कंठ संगीत के संदर्भ में श्वसन किया

भारतीय संगीत में गायन प्रधान अंग है अर्थात् कण्ठ संगीत को हमारे यहाँ सर्वप्रथम स्थान दिया गया है। ऐसी सर्वसाधारण की धारणा है। गायन का मुख्य अंग आवाज (कण्ठ स्वर) है। यह सत्य है कि मधुर आवाज ईष्वरीय देन है परन्तु 65 प्रतिषत लोगों की आवाज गायन के योग्य बनाई जा सकती है और अभ्यास से मजी हुई आवाज में भी बहुत कुछ माधुर्य आ ही जाता है।

उदाहरणार्थ – पं कृष्णराव शंकर पण्डित, पं राजा भैया पूंछवाले प्रभृति गायकों में कण्ठ माधुर्य की ईष्वरीय देन नहीं है परन्तु कौन कह सकता है कि इन गायकों के गाने में चमत्कार और रस नहीं है। इनके गायन में रस का प्रादुर्भाव सतत् परिश्रम, नित्य प्रति के अभ्यास और स्वर स्थानों के युक्ति युक्त प्रयोग का ही सुपरिणाम है। कण्ठ संगीत के साधकों के लिए आवष्यक है कि मानवीय स्वर यन्त्र को उचित परिमाण में श्वास प्राप्त होनी चाहिए ताकि यह ठीक प्रकार से ध्वनि अथवा स्वर को उत्पन्न कर सके। साथ ही

यह भी आवष्यक है कि श्वास की पर्याप्त मात्रा समान गति से प्रवाहित हो, अन्यथा जो आवाज उत्पन्न होगी, उसमें अनावष्यक उतार–चढ़ाव होगा और वह अस्वाभाविक प्रतीत होगी। अच्छी व स्वाभाविक आवाज वह कहलाती है जिसमें गायक की इच्छानुसार ही उतार–चढ़ाव हो और श्वास का नियमित प्रवाह हो क्योंकि श्वास और स्वर में बड़ा गहरा सम्बन्ध है। साधारण अवस्था में श्वास और प्रश्वास में संतुलन बना रहता है। श्वास क्रिया स्वतः हमारे अचेतन में होती रहती है, किन्तु अभ्यास द्वारा उस पर काबू पाया जा सकता है, उसकी गति में परिवर्तन किया जा सकता है, श्वास की मात्रा को घटाया बढाया जा सकता है और श्वास को कुछ देर के लिए रोका जा सकता है। एक स्वस्थ मनुष्य एक मिनट में 14 से लेकर 15 तक श्वास लेता है। मनुष्य की आयु के आधार पर श्वासों की संख्या घटती–बढती है जैसे नवजात शिशु की श्वासों की संख्या एक मिनट में 44 तक होती है और 5 या 6 वर्ष के बालक के श्वासों की संख्या 25–26 तक होती है। अधिक परिश्रम करने या व्यायाम तथा भागने–कूदने या खेल–कूद के समय हमारे श्वासों की संख्या बढ जाती है। श्वास संख्या रात की अपेक्षा दिन को और लेटने की अपेक्षा खड़े रहने तथा चलने में अधिक रहती है। ज्वर तथा किसी अन्य रोग के कारण भी श्वास संख्या बढ जाती है परन्तु गायन के समय और प्राणायाम के समय श्वासों की संख्या घट जाती है और श्वास लम्बे और गहरे लिए जाते हैं। जिनसे फेफड़ों को शक्ति मिलती है और वह कई बीमारियों से बचे रहते हैं। इसलिए हमेषा शुद्ध वायु में श्वास गहरे और लम्बे लेने चाहिए ताकि नासिका द्वारा खिंची हुई वायु फेफड़ो के प्रत्येक कोष्ठ में पूर्णतया प्रवेष हो सके और फेफड़े पूर्ण रूप से फैल कर श्वास के चलन को ठीक रखें क्योंकि श्वास के चलन पर ही सारे शरीर का चलन तथा कार्यक्रम निर्भर रहता है और इसके आधार पर ही दिल की धड़कनें तथा रक्त–वाहक नाड़ियों का क्रम चलता रहता है और स्वस्थ फेफड़ों से ही मनुष्य अपनी ध्वनि को पूर्णतया निकाल सकता है। कण्ठ संगीत का अभ्यास करते समय आवाज हमेषा खुली 'आ' कार में निकालनी चाहिए। आवाज को ना तो चुराकर (दबाकर) और ना ही जोर से निकालना चाहिए। इस प्रकार यह दोनों ही दोषयुक्त है। आवाज में वजन तथा स्थिरता लाने एवं श्वास का नियन्त्रण सिद्ध करने के लिये प्रारम्भ से ही धीमी लय में सावकाश योग्य स्वरों पर ठीक रूप से ठहरते हुए गाना आवश्यक है।

1.11 योग के अनुसार श्वसन क्रिया :

'मानवीय–जीवन अवधि श्वसन–प्रणाली पर निर्भर है। दीर्घ एवं धीरे श्वास लेने वाला व्यक्ति अल्प एवं जल्दी श्वास लेने वाले व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक काल तक जीवित रहता है। प्राचीन योगी इस विषय में इतना विष्वास रखते थे कि मनुष्य की आयु श्वास की संख्या में गिनते थे ; हमारी तरह वर्ष से उनकी गणना नहीं करते थे। उनका विचार था कि व्यक्तिगत भिन्नतानुसार प्रत्येक व्यक्ति के जीवन–काल में श्वसन–संख्या निष्चित रहती है। प्रत्येक श्वास को दीर्घ–गहरी बनाकर प्रत्येक श्वास से अधिक प्राण शक्ति ग्रहण की जा सकती है। इस प्रकार एक व्यक्ति अपने जीवन का अच्छा उपभोग कर सकता है।

प्राचीन योगियों ने अनुभव किया था कि सर्प, हाथी, कछुआ, ह्वेल आदि जानवर लम्बी श्वास लेते हुए दीर्घकाल तक जीवित रहते हैं। इसके विपरीत तीव्र गति से श्वास लेने वाले पक्षी, कुत्ता, खरगोश आदि की जीवनावधि कम होती है। इस अवलोकन के परिणामस्वरूप उन्हें दीर्घ श्वसन–प्रणाली का महत्त्व ज्ञात हुआ। एक अन्य महत्वपूर्ण बात यह है कि श्वसन की दर का सम्बन्ध प्रत्यक्षतः दिल से है। धीमी श्वास गति से दिल की धड़कन मन्द रहती है जो लम्बी उम्र प्रदान करती है। उदाहरण के लिए कुछ जानवरों का अवलोकन जरूरी है। एक चूहे के दिल की धड़कन की गति प्रति मिनट एक हजार होती है। उसकी जीवन अवधि बहुत कम होती है। ह्वेल के दिल की धड़कन प्रति मिनट सोलह की दर से तथा हाथी की प्रति मिनट पचीस रहती है। ये दोनों ही दीर्घ आयु के लिए प्रख्यात हैं।

प्राणायाम नियन्त्रित श्वसनिक व्यायामों से सम्बद्ध है। स्थूल रूप में वह जीवन धारक शक्ति अर्थात् प्राण से सम्बन्धित है। आधार रूप से प्राणायाम के तीन अंग हैं – (1) पूरक (ष्वास को अन्दर खींचना), (2) कुम्भक (श्वास को रोकना) तथा (3) रेचक (ष्वास को बाहर छोड़ना)।

श्वास की दीर्घता बढाने के लिए प्राणायाम की कुछ विधियों में श्वसन–क्रिया को क्रमशः धीमा किया जाता है और प्रश्वास की वायु का वेगकम हो जाता है। कुछ समय तक श्वसन क्रिया को पूर्णतः रोकने के लिए प्राणायाम की कुछ क्रियाओं में कुम्भक (ष्वास

रोकने) का अभ्यास भी किया जाता है। प्राणायाम के द्वारा श्वास लेने का ठीक स्वभाव बन जाता है। क्योंकि अधिकांश व्यक्ति गलत ढंग से श्वास–क्रिया करते हैं। फेफड़ों के कुछ भाग की

क्षमता का ही उपयोग करते हुए अधूरी श्वास ही लिया करते हैं। श्वास–गति में समानता नहीं होती, वह लय युक्त नहीं रहती। इसका दुष्परिणाम यह होता है, कि हमारे समस्त शरीर एवं मस्तिष्क में पोषण की कमी हो जाती है। इसीलिए श्वास–प्रश्वास की क्रिया को दीर्घ एवं समान गति के साथ करना चाहिए। यह भी स्मरण रखना चाहिए कि श्वास के बिना हम जीवित नहीं रह सकते तथा आधी श्वास लेने से हमारी उम्र भी आधी हो जाती है।

शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य हेतु श्वसन–प्रक्रिया का विभाजन दो वर्गों में किया जा सकता है :–

(1) उदर द्वारा श्वसन

इसे श्वास–पटल द्वारा श्वसन क्रिया ;कपंचीतंहउंजपब तमेचपतंजपवदद्ध भी कहते हैं। बैठकर या चित लेटकर एक हाथ को नाभि पर रखकर इसकी अनुभूति स्वयं की जा सकती है। अब दीर्घ पूरक करना चाहिए। इससे उदर प्रदेष फूल जायेगा तथा हाथ ऊपर उठ जायेगा। जैसे ही उदर बाहर की ओर फूलता जाता है, वैसे ही हृदय–पटल नीचे दबता जाता है। पूरक के समय हृदय–पटल की स्थिति जितनी नीचे रहेगी। उतनी ही अधिक वायु का प्रवेष फेफड़ों में होगा और फेफड़े फैलेंगे। अब दीर्घ रेचक करते हुए यह अवलोकन करना है कि उदर में संकुचन होता है ; फलस्वरूप हाथ मेरूदण्ड की ओर नीचे आता है। उदर में उतार आने पर श्वास–पटल में चढाव आता है। इस तरह फेफड़ों से अधिकतम मात्रा में वायु का निष्कासन होता है। अभ्यास करते समय छाती या कंधों में हलचल नहीं करनी चाहिए।

(2) छाती द्वारा श्वसन

प्रथम प्रक्रिया की भाँति ही बैठकर या चित लेटकर छाती द्वारा श्वसन किया जाता है। अब छाती या पसलियों का विस्तार करते हुए पूरक किया जाता है। इस क्रिया से यह अनुभव होगा कि पसलियाँ ऊपर बाहर की ओर उठ जाती है। इसके बाद रेचक किया जाता है।

जिससे पसलियों में उतार आ जाता है। इस श्वसन–काल में उदर–प्रदेष में गति नहीं होनी चाहिए। उपरोक्त दोनों प्रकार की श्वसन–प्रक्रियाओं के योग से यह सम्भव है कि फेफड़ों में अधिकतम मात्रा में वायु का प्रवेष किया जाये एवं रेचक द्वारा त्यात्ज वायु का निष्कासन अधिक से अधिक मात्रा में किया जाये। इस प्रकार की श्वसन–क्रिया ही प्रत्येक व्यक्ति के लिए उपयोगी है। इसे पूर्ण यौगिक श्वसन कहते हैं। हर मनुष्य को इसी विधि से श्वास–प्रष्वास क्रिया करनी चाहिए।

1.12 संगीत में प्राणायाम की उपादेयता :

संगीत के सन्दर्भ में विषेषकर कण्ठ संगीत जो स्वयं ही एक श्वसन व्यायाम है। इस विधा में प्राणायाम का अति महत्व है। यह स्वास्थ्य रक्षा के साथ–साथ कण्ठ ध्वनि के लिए इतना लाभदायक है कि इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि हमारे प्राचीन ऋषियों ने इसे धर्म का अंग माना है और प्रत्येक उपासना, प्रार्थना में इसे करना आवष्यक समझा जाता है और इसके लिए कोई न कोई मन्त्र ऐसा रख दिया है जिसका जाप श्वास रोक कर करना पड़ता है। जिन गायकों का गाते समय श्वास टूट जाता है, फूल जाता है या कमजोर पड़ जाता है या पूरी तान पलटा या पंक्ति की लम्बाई तक श्वास नहीं पहुँच पाता वे प्राणायाम द्वारा अपने इस दोष को दूर कर सकते हैं। प्राणायाम के द्वारा संगीत साधक अपने श्वास को जितना रोक सके उतना ही उसके गायन और ध्वनि में मधुरता और ओज उत्पन्न होगा। अतः गायकों तथा वक्ताओं के लिए प्राणायाम साधना अति आवश्यक और लाभदायक है। गायकों के लिए 'डॉ. लक्ष्मी नारायण गर्ग' ने भी अपनी पुस्तक 'आवाज सुरीली कैसे करें' में विषेष रूप से प्राणायाम के दो अभ्यास करने की सलाह दी है जो इस प्रकार है –

उज्जायी प्राणायाम – पद्मासन या सिद्धासन में बैठ जाइए। मुंह बन्द कर लीजिए। दोनों नासिकाओं से समरूप में धीरे–धीरे आवाज करते हुए तब तक श्वास लीजिए, जब तक गले से हृदय तक का स्थान वायु से भर न जाये। जितनी देर श्वास को आराम से रोक सकें, रोकें और फिर दायें नासारन्ध्र को दायें अंगूठे से बन्द करके धीरे–धीरे बायें नासारन्ध्र

से श्वास छोड़ें। इस प्राणायाम में हवा खींचना, उसे रोकना और निकालना तीनों कार्य स्वल्प परिमाण में ही करने चाहिए। इस प्राणायाम का नाम 'उज्जायी' है। इस प्राणायाम में श्वास लेते समय सीने को फैलाना चाहिए। कण्ठद्वार ;ळसवजसपेद्ध के आंशिक रूप से बन्द होने के कारण श्वास लेते समय एक विचित्र–सी ध्वनि निकलती है। जैसे खर्राटे लेते समय गले से आवाज होती है। श्वास खींचते समय उत्पन्न ध्वनि बहुत हल्की

और एक समान होनी चाहिए और यह अबाध भी होनी चाहिए। इस कुम्भक का अभ्यास चलते समय अथवा खड़े रहते समय भी किया जा सकता है। यह सिर की गर्मी को दूर करता है। इस प्राणायाम के अभ्यास से साधक बड़ा ही सुन्दर हो जाता है। जठराग्नि प्रदीप्त होती है। इसके करते रहने से दमा, क्षय तथा सभी प्रकार के फुफ्फुसीय रोग दूर होते हैं। सभी प्रकार के हृदय–रोग तथा वे रोग जो श्वास में ऑक्सीजन की कमी के कारण होते हैं दूर हो जाते हैं।

उज्जाई प्राणायाम द्वारा बच्चों का तुतलाना भी ठीक होता है। इसके अभ्यासी को कफ, स्नायु, मन्दाग्नि, आमातिसार, प्लीहा–वृद्धि, क्षय, खाँसी या ज्वर के रोग नहीं होते। गले को ठीक निरोगी व मधुर बनाने हेतु इसका नियमित अभ्यास करना चाहिए। साथ ही इससे कण्ठ की नसें भी स्वस्थ एवं सबल होती है। **शीतली प्राणायाम** – जिह्वा को होंठ से कुछ दूरी पर बाहर निकालिए। जिह्वा

को मोड़ कर नली की भाँति बनाइए। शीत्कार की आवाज करते हुए वायु को पूरक कीजिए। जब तक सुखपूर्वक श्वास को रोक सकें, रोके रखिए फिर दोनों नासारन्ध्रों से धीरे–धीरे श्वास को बाहर निकालिए। इसका प्रतिदिन प्रातः 15 से 30 बार तक अभ्यास करना चाहिए। इस प्राणायाम को पद्मासन, सिद्धासन, वज्रासन या चलते–फिरते एवं खड़े रहकर भी कर सकते हैं। यह ध्यान रखना चाहिए कि यह शीतकाल में कफ–प्रकृति के मनुष्य के लिए वर्जित है, पित्त और वायु के कारण दूषित हुआ कण्ठ इस प्राणायाम के नियमित प्रयोग से धीरे–धीरे ठीक हो जाता है। इसे 'षीतली प्राणायाम' कहते हैं। यह प्राणायाम रूधिर शुद्ध करता है। यह प्यास बुझाता तथा भूख शान्त करता है। यह शरीर में शीतलता लाता है। इसके अभ्यास से गुल्म, प्लीहा, बहुत से जीर्ण रोगों की जलन, ज्वर, तपेदिक, अपच, पित्तदोष, कफ, विष तथा सर्पदंश के कुप्रभाव दूर होते हैं। जो इस प्राणायम

का नियमित अभ्यास करते हैं, वे सर्प तथा बिच्छुओं के दंष से प्रभावित नहीं होते। शीतली कुम्भक सर्प के श्वास लेने का अनुकरण है। अतः उपर्युक्त प्राणायाम कण्ठ संगीत के परिपेक्ष्य में बहुत लाभदायक सिद्ध हो सकते हैं।

भ्रामरी प्राणायाम – पद्मासन या सिद्धासन में बैठकर दोनों नासारन्ध्रों से श्वास पूरा अन्दर भरकर मध्यमा अंगुलियों से नासिका के मूल में आँख के पास से दोनों ओर से थोड़ा दबाएँ, मन को आज्ञा चक्र में केन्द्रित रखें। अंगूठों के द्वारा कानों को पूरा बन्द कर लें। अब भ्रमर की भाँति गुन्जन करते हुए नाद रूप में ओम का उच्चारण करते हुए श्वास को बाहर छोड़ दें। पुनः इसी प्रकार आवृत्ति करें। इस तरह यह प्राणायाम कम से कम तीन बार अवष्य करना चाहिए। यह प्राणायाम ध्यान के लिए अति उपयोगी है। इससे मन की चंचलता दूर होती है। मानसिक तनाव, उत्तेजना, उच्च रक्तचाप, हृदय रोग आदि में
लाभप्रद है। कण्ठ संगीत के साधकों के लिए भी यह लाभदायक है इससे आवाज में
गूंज उत्पन्न होती है जो कण्ठ संगीत के साधकों के लिए आवश्यक है।

भस्त्रिका प्राणायाम – संस्कृत में भस्त्रिका शब्द का अर्थ भाथी या धौंकनी है। भाथी की तरह लम्बा तथा वेगपूर्वक श्वास लेना और निकालना भस्त्रिका–प्राणायाम का विषेष लक्षण है। किसी ध्यानात्मक आसन में सुविधानुसार बैठकर दोनों नासिकाओं से श्वास को पूरा अन्दर डायफ्राम तक भरना व बाहर भी पूरी शक्ति के साथ छोड़ना भस्त्रिका प्राणायाम कहलाता है। इस प्राणायाम को अपने–अपने सामर्थ्य के अनुसार तीन प्रकार से किया जा सकता है। मन्द गति से, मध्यम गति से तथा तीव्र गति से। जिनके फेफड़े व हृदय कमजोर हो ; उनको मन्दगति से पूरक व रेचक करते हुए प्राणायाम करना चाहिए।
भस्त्रिका शक्तिशाली व्यायाम है। कपालभाति तथा उज्जाई के मेल से भस्त्रिका बनता है। ग्रीष्मकाल में अल्प मात्रा में इसे करना चाहिए। इस प्राणायाम को 3–5 मिनट तक प्रतिदिन करना चाहिए।`भस्त्रिका के अभ्यास से गले की सूजन दूर होती है, सर्दी–जुकाम, एलर्जी, श्वासरोग, दमा, पुराना नजला, साइनस आदि समस्त कफ रोग दूर होते हैं। फेफड़े सबल बनते हैं तथा हृदय व मस्तिष्क को शुद्ध प्राण वायु मिलने से आरोग्य लाभ होता है। इससे अच्छी भूख लगती है। यह शरीर को उष्ण रखता है। त्रिदोष सम होते हैं। प्राण व स्थिर होता है। अतः यह प्राणायाम कण्ठ संगीत के साधकों के लिए गले से सम्बन्धी रोगों के

बचाव में सहायक है। इसे करने से गायक की आवाज मजबूत व दमदार बनती है। प्राणायाम के अतिरिक्त संगीत साधकों में स्वर को परिष्कृत करने के लिए प्रणव साधना का भी विधान किया जाता है।

1.13 प्रणव साधनाः

प्रणव प्राणायाम ही प्राणायाम का चरम है। इसे ध्यानावस्था में पहुँचाना भी कहा जा सकता है। वस्तुतः प्राणायाम का परिणाम ही ध्यान है। इस प्रकार के प्राणायाम करते–करते जब इन्द्रियों एवं मन का क्रमषः उपराम होने लगता है तब व्यक्ति स्वतः ध्यान की गहराई में उतरने लगता है। एक दृष्टा बनकर श्वास–प्रष्वास को दीर्घ एवं सूक्ष्म गति से लेते और छोड़ते हुए प्रत्येक श्वास के साथ प्रणव साधना करें। श्वास लेते और छोड़ते समय श्वास की गति इतनी सूक्ष्म होनी चाहिए कि स्वयं को भी श्वास की ध्वनि की अनुभूति न हो। यह प्रयत्न करना चाहिए कि एक मिनट में एक श्वास तथा प्रष्वास चले। इस प्रकार श्वास को भीतर तक देखने का प्रयत्न करना चाहिए। आरम्भ में श्वास के स्पर्ष की अनुभूति मात्र नासिकाग्र पर होगी। धीरे–धीरे श्वास के गहरे स्पर्ष का भी अनुभव होगा। इस प्रकार कुछ समय तक श्वास के साथ भाव–पूर्वक ओंकार शक्ति का जप करने से ध्यान स्वतः होने लगता है। यही 'प्रणव साधना' है। प्राणायाम द्वारा श्वास–यन्त्र पर पूर्ण अधिकार हो ही जाता है। परन्तु कठिनाई यह है कि अचेतन रूप से जो क्रिया हमारे शरीर द्वारा स्वतः होती रहती है, उसे जागरूकता की स्थिति तक लाना है। उदाहरण के लिए साधारण अवस्था में श्वास–प्रष्वास की क्रिया स्वतः ही होती रहती है किन्तु हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि इस क्रिया को सचेत रूप से किया जाए और इस पर अधिकार भी प्राप्त हो जाए। ऐसा कहा जाता है कि जब भारतीय गायक पण्डित ओंकारनाथ ठाकुर ''मैया मैं नहिं माखन खायो' (सूरदास का पद) गाते थे तो लोगों के समक्ष भगवान् कृष्ण और यशोदा माता का इतना सजीव चित्रण उपस्थित हो जाता था कि लोग रोने लगते थे। यह वर्षों की तपस्या और स्वर साधना का ही फल है। एक अन्य महत्वपूर्ण तथ्य यह है कि आवाज के लिए प्राणायाम करते समय आवाज की दिशा (Direction) पर भी ध्यान देना आवश्यक है। इसका कारण हमारे स्वरतार की बनावट इस प्रकार की है जिसमें से काफी दूरी पर

महत्वपूर्ण प्रतिध्वनोत्पादक यन्त्र लगे होते हैं। डॉ. लक्ष्मी नारायण गर्ग के मतानुसार 'श्वास की गति और दिशा पर पूरा–पूरा अधिकार होना चाहिए अन्यथा श्वास–ग्रसनिका (Pharynx) में जमा हो जाती है जहाँ कोमल तन्तुओं में बहुत कुछ ध्वनि को खो बैठती है। यदि आवाज को सन्तोषजनक बनाना है तो नासिका–प्रदेष का पूरा–पूरा इस्तेमाल आवश्यक है। स्वर को बनाने–बिगाड़ने में इसका बड़ा हाथ रहता है। वह हड्डी से निर्मित होती है जिस पर हल्की–सी झिल्ली चढ़ी होती है। अतएव वह आवाज को साफ
और चमकदार बना देता है। श्वास की दिषा इस प्रकार होनी चाहिए कि उसमें मुख–प्रदेश भरा जा सके और तालु के ऊपरी भाग का पूरा–पूरा उपयोग हो। श्वास लेने की क्रिया में तीन प्रमुख बातें एक–दूसरे पर आधारित है –

1. आवश्यक मात्रा में श्वास की सप्लाई।
2. समान संयत गति से श्वास को छोड़ा जाना।
3. तालु के ऊपरी भाग की ओर गति।

इन प्रमुख बातों का ध्यान रखते हुए एक गायक एवं वक्ता को अपने कण्ठ से स्वर ही निकालना चाहिए। जिससे उसकी आवाज का प्रभाव श्रोताओं के अन्तर्मन को छू ले।

1.14 संगीत एवं योग साधना में साम्य :

संगीत–साधना एवं योग–साधना दोनों ही व्यापक एवं गहन विषय हैं। इनका मुख्य आधार क्रियात्मक पक्ष है। ये अत्यन्त उच्चकोटि की साधनाएँ है। जिसमें शारीरिक एवं मानसिक क्रियाओं का समन्वय तथा अनेक सूक्ष्म तत्त्व निहित है। जिनका ध्यान साधना काल में साधक को रखना पड़ता है। साधना का अर्थ है, मन को किसी विषय में एकनिष्ठ भाव से संयुक्त करना। किसी साध्य वस्तु की प्राप्ति के लिए जो प्रयत्न किया जाता है उसे साधना कहते हैं। महर्षि पतंजलि, भगवान बुद्ध, आदि शंकराचार्य जैसे महान् योगियों ने अपने–अपने ढंग से विभिन्न साधना पद्धतियों का आविष्कार किया। इसी प्रकारनाद ब्रह्म उपासक संगीत योगियों ने संगीत साधना का मार्ग प्रषस्त किया है। डॉ. उमाशंकर शर्मा के मतानुसार संगीत और योग साधना में अत्यन्त साम्य है। जहाँ योग की साधना में मात्र साधक ही लाभान्वित होता है किन्तु संगीत साधक अपनी कला द्वारा प्राप्त सिद्धि से चमत्कृत रूप से स्वयं को एवं समस्त श्रोताओं के मन को एकाग्र कर आनन्द प्रदान करता है। संगीत साधना एवं योग साधना में मूलतः निम्नलिखित बिन्दुओं पर साम्य क्रियान्वित होता है –

1. संगीत एवं योग साधना में अष्टांग योग का समान पालन ।
2. गुरु के योगदान का समान महत्व।
3. अभ्यास एवं साधना का समान महत्व ।
4. शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभाव।
5. संगीत एवं योग का सार्वभौमिक रूप।
6. ध्यान और एकाग्रता की उपलब्धि।
7. आत्मसाक्षात्कार एवं परब्रह्म की प्राप्ति का समान उद्देश्य।

संगीत साधना एक अत्यन्त उत्कृष्ट साधना है। इस कला में संगीत साधक को प्रकार से अपने शरीर और मन का सामंजस्य करना होता है। एक संगीत साधक को शास्त्र पक्ष, क्रिया पक्ष, बुद्धि पक्ष एवं प्रदर्शन सभी पर समान अधिकार प्राप्त करना अत्यन्त आवष्यक

माना गया है। संगीत रत्नाकर नामक ग्रन्थ में गायक के गुणों के साथ–साथ अवगुणों का भी वर्णन प्राप्त होता है जिससे प्रमाणित होता है कि इस कला की साधना कितनी कठिन और श्रमसाध्य है। महर्षि पतंजलि द्वारा वर्णित अष्टांग योग साधना मनुष्य के समग्र स्वास्थ्य प्रबन्धन हेतु निर्मित एक श्रेष्ठतम् प्रणाली है। जो मानव स्वास्थ्य के चारों आयामों को परिमार्जित करती है। यथा –

1. यम } सामाजिक स्वास्थ्य
2. नियम (Ethical Practices)
3. आसन } शारीरिक स्वास्थ्य
4. प्राणायाम (Physical Practices)
5. प्रत्याहार } मानसिक स्वास्थ्य

(Sensorial Practices)

6. धारणा } आध्यात्मिक स्वास्थ्य
7. ध्यान (Meditative Practices)
8. समाधि

इन्हें क्रम से साधने पर चित्त भी शुद्ध होता है, जो दोनों साधनाओं में अनिवार्य है। योग साधना के ये आठ अंग संगीत साधना पर भी चरितार्थ होते हैं जिसका वर्णन इस प्रकार–

1.15 संगीत एवं योग साधना में अष्टांग योग का समान पालन

1. यम – अष्टांग योग में यमों द्वारा हम अपने बाह्य आचरण सम्बन्धी सुधार कर सकते ये पाँच है, इन पाँचों यमों की संगीत में भी महती आवश्यकता है। अहिंसा, सत्य, अस्ते ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह यमों के इन प्रकारों को योग तथा संगीत की साधना करने वाले साधक को अपने आचरण में लाना पड़ता है, जिससे बाह्य आचरण में शुद्धता आती है तथा वह अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होता है।

2. नियम – शौच, संतोष, तप, स्वाध्याय और ईष्वर–प्राणिधान का मानव–जीवन में, विशेष रूप से संगीत–साधक तथा योग–साधक के लिए अत्यधिक महत्व है। शरीर एवं मन को

पवित्र रखना, प्रत्येक परिस्थिति में सन्तुष्ट रहना, सत्कर्म करना, सद्ग्रन्थों का अध्ययन करना तथा ईश्वर के प्रति समर्पित हो जाने से ही अच्छे मानव का निर्माण हो सकता है। नियमों से अन्तःकरण शुद्ध होता है, जो दोनों साधनाओं के लिए अति अनिवार्य है।

3. आसन – आसनों से शरीर की शुद्धि होती है। संगीत तथा योग–साधनामें चित्त की वृत्तियों का निरोध आवष्यक है। इनको रोकने का उपाय सर्वप्रथम शरीर स्थिर करना है। इसलिए साधक को स्वर साधना, जप, ध्यान आदि सिद्धि के लिए काफी समय तक शरीर को स्थिर करके बैठना पड़ता है। इसलिए ऐसा कोई भी आसन, जिस पर सुखपूर्वक लम्बे समय तक बैठा जा सके, श्रेष्ठ आसन है। आसन–सिद्धि से चित्त की चंचलता दूर होती है व स्वास्थ्य लाभ भी होता है। संगीत–साधना और योग–साधना में जिस प्रकार आसन लगाना है, उसका प्रतिदिन अभ्यास करना चाहिए तथा अभ्यास करने से ही उसमें परिपक्वता आती है।

4. प्राणायाम – श्वास–प्रष्वास का स्वाभाविक गति से नियमन, विस्तार एवं संरक्षण का अभ्यास करना प्राणायाम कहलाता है। अष्टांग योग का एक प्रमुख अंग है परन्तु संगीत एवं कण्ठ साधना में इस साधन का बड़ी सरलता से अधिकाधिक प्रयोग किया जाता है विषेषतः खरज–साधना में। 'मन्द्र–साधना में वायु अवरोध की आवष्यकता स्पष्ट रूप से दिखाई देती है जो संगीत साधक वायु की अधिक मात्रा को 'मणिपूर चक्र' (नाभि) में या उसके नीचे अवरूद्ध नहीं कर पाता, वह अधिक देर तक मन्द्रषड्ज पर स्थिर नहीं रह सकता।'392 श्वास–प्रश्वास प्रक्रिया को गहरी, निरन्तर व अटूट बनाये रखने से एक स्वर साधक भविष्य में कुशल संगीतज्ञ बन सकता है। इस प्रकार संगीत में स्वतः ही प्राणायाम हो जाता है।

5. प्रत्याहार – प्रत्याहार द्वारा इन्द्रियों को बाह्य विषयों से समेटकर मन में विलीन करने के अभ्यास का नाम प्रत्याहार है। प्रत्याहार में संसार के विषयों के प्रति आसक्ति का त्याग करना होता है। उनसे अपना सम्बन्ध–विच्छेद कर आत्मा के साथ सम्बन्ध जोड़ना होता है। इसलिए अपने विचारतन्त्र को, मानसिक हलचलों को बिखराव से बचाकर एक सीमित परिधि में सीमाबद्ध करने का सर्वोत्तम उपाय संगीत साधना है जो अष्टांग योग के इस अंग का भी निर्वाह करती है।

6. धारणा – चित्त को किसी एक स्थान विषेष पर या किसी एक लक्ष्य में दृढ़ करना या चित्तवृत्ति को केन्द्रित करना ही 'धारणा' है। संगीत साधना में भी एकाग्रचित्त रहना अनिवार्य व अपेक्षित है। जिससे राग के प्रति एकाग्र चिन्तन द्वारा रसात्मकता की अनुभूति होती है।

7. ध्यान – आत्मा का ईष्वर विषयक चिन्तन करते–करते उसी में तल्लीनता हो जाना ध्यान कहलाता है। संगीत कला 'ध्यान' के समान ही व्यक्ति को आत्मदर्शी बनाती है। संगीत साधना में स्वर पर अर्थात् उसकी आत्मा पर ध्यान केन्द्रित करना होता है, मन जरा–सा भी भटका, स्वर शुद्ध नहीं लगेगा, अतः मन स्वतः ही स्वर केन्द्रित हो जाता है और संगीत की स्वर–लहरियों द्वारा आन्दोलित होकर किसी एक ध्येय पर स्थित होता है, तब ध्यान–योग का आनन्द आता है।

8. समाधि – चित्त जिसका ध्यान कर रहा हो, उसका स्वरूप शून्य होकर जब केवल ध्येयमात्र की प्रतीति करे तो वह 'समाधि' की अवस्था कहलाती है। यह परम चेतना की अवस्था है, जिसमें आत्मा का परमात्मा से एकाकार होता है। योग के अन्तिम अंग 'समाधि' की प्राप्ति हेतु मीराबाई, सूरदास, स्वामी हरिदास, चैतन्य महाप्रभु, त्यागराज आदि अनेक महान् विभूतियों ने संगीत को आत्मसात् कर आध्यात्मिक लक्ष्यों को प्राप्त किया। अर्थात् जब संगीत साधक की आत्मा समस्त सांसारिक विषयों से हटकर केवल 'नाद ब्रह्म' में विलीन हो तब वह अवस्था भी 'समाधि' से कम नहीं होती। योग साधना में अष्टांग योग के आठ अंग – यम, नियम, आसान, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि संगीत साधना में स्वयमेव सम्मिलित हो जाते हैं। अतः योगसाधना के ये आठ अंग संगीत साधना में ही चरितार्थ होते हैं। यद्यपि योगसाधना अनाहत नाद की साधना पर व संगीत साधना आहत नाद की साधना पर आधारित होते हुए भी समानमार्गीय सिद्ध होती है क्योंकि 'नाद से चित्तवृत्ति का अनुमान स्वयं सिद्ध है और नाद को उपास्य तत्त्व व उपासना का माध्यम स्वीकार करने से ही नाद ब्रह्मस्वरूप होकर आत्मप्रकाश का उपादान बन जाता है। इस प्रकार नाद की साधना ही संगीत को योग साधना के समकक्ष सिद्ध कर देती है। योग की अष्टांग साधना ही संगीत साधना के लिए अपेक्षित आन्तरिक भावनात्मक पवित्रता, धैर्य, इन्द्रिय संयम, एकाग्रचित्तता, प्राणायाम, श्वास धारण व श्वास निष्क्रमण आदि को क्रियान्वित करती है।'

1.16 संगीत एवं योग साधना में गुरू स्थान एवं महत्व

भारतीय संगीत एवं योग में गुरु का स्थान सर्वोच्च माना गया है –

गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महद्दे ारः ।

गुरुः साक्षात्परं ब्रह्म तरमै श्री गुरवे नमः ।।

(गुरु स्त्रोतम्)

अर्थात् गुरु ब्रह्म है, गुरु विष्णु है, गुरु ही महेष है, गुरु ही प्रत्यक्ष परब्रह्म का रूप है ऐसे गुरु को नमन है। भारतीय संस्कृति में गुरु का दर्जा ईष्वर के बराबर माना जाता रहा है और कहीं–कहीं कवियों ने तो गुरु को ईष्वर से भी ऊपर माना। क्योंकि गुरु व्यक्ति और सर्वषक्तिमान के बीच एक कड़ी का काम करता है। संगीत साधना एवं योग साधना दोनों ही गुरुमुखी विद्या है। संगीत व योग का ज्ञान न होने पर, कण्ठ व शरीर की सुन्दरता तथा चित्त की एकाग्रता मात्र से अभ्यास या साधना का लक्ष्य पूर्ण नहीं होता। अतः गुरु मुख से प्राप्त ज्ञान जिस प्रकार एक योगी के लिए आवष्यक है उसी प्रकार एक संगीत साधक के लिए भी अनिवार्य है। भारतीय संगीत एवं योग परम्परा में गुरु के द्वारा निर्धारित विधियों को शिष्य द्वारा सहृदय सहर्ष स्वीकार करना और उनका प्रचार–प्रसार करना, गुरु–शिष्य परम्परा कहलाती है। श्री गुरुतत्त्व मुख्यतः योगषास्त्र एवं तन्त्र साधना का मुख्य आधार विषय है। गुरु का भारतीय संस्कृति, धर्म, अध्यात्म एवं कला–साधना की परम्परा में अन्यतम महत्व है। भारत में उपर्युक्त विषयों में जितना आदर–सम्मान, श्रेयस तथा महत्व गुरुतत्त्व को दिया जाता है उतना शायद किसी अन्य को नहीं। गुरु को ईश्वर–तुल्य सर्वोच्च पद प्रदान करते हुए सभी साधक, चिन्तक, दार्शनिक, कलाकार, संगीतकार सर्वप्रथम गुरु–प्रणति, गुरु वन्दना और गुरु स्तवन से अपना पथ निर्धारित करते हैं। अतः भारतीय आध्यात्मिक वाड्मय की प्रमुख सम्पदाओं में चरण–वन्दना, गुरु–स्तवन, स्त्रोत, प्रार्थना और गुरु–ध्यान एवं स्मरण किया जाता है। इतना ही नहीं, अध्यात्म परम्परा के अनुसार तत्त्व अथवा ब्रह्म के ज्ञान तथा ऐक्य–बोध का एकमात्र साधन भी गुरु है। भारतीय संगीत एवं योग में साधना व अभ्यास प्रणाली हेतु इष्ट प्राप्ति तथा सिद्धि अनुभव हेतु गुरु

ही सर्वसामर्थ्यवान सिद्ध तत्त्व है क्योंकि गुरु शरीर नहीं होता, प्रत्युत्त तत्त्व होता है। भारतीय संगीत में जो सुघड़ता एवं शास्त्रबद्धता है वह अनुपम है। इस संगीत के सतत् विकास का श्रेय गुरु–षिष्य परम्परा को है। गुरु ने अपनी तपस्या साधना और प्रयोगों से जितना जाना वह सब उसने अपने शिष्यों में बांट दिया। शिष्यों ने अपने गुरु द्वारा ग्रहण की हुई इस विधि को सहेजा, संवारा और उसे अपनी साधना और प्रयोगों द्वारा अधिक पल्लवित और विकसित किया। गुरु–मुख से सुन–समझकर ही किसी भी विद्या का सही ज्ञान सम्भव है। इसलिए इसे 'गुरु–मुखी' विद्या भी कहते हैं। गुरु–मुख से संगीत प्राप्त होता है यह निर्विवाद सत्य है क्योंकि क्रियात्मक षिक्षा की दृष्टि से पुस्तकें और स्वरलिपि आदि व्यर्थ सिद्ध होते हैं। वस्तुतः प्राचीन गुरु–शिष्य परम्परा ने ही संगीत विद्या को अधिक समृद्ध और सम्पन्न बनाया है। गुरु–शिष्य परम्परा संगीत एवं योग साधनाओं के लिए सबसे प्राचीनतम एवं सर्वश्रेष्ठ प्रणाली भी मानी जाती है। वेदकाल से ही गुरुकुल में रहकर गुरु

की सेवा करके कठोर अनुषासन, नियमित एवं संयमित जीवन बिताते हुए एवं सतत् साधना करते हुए गुरु द्वारा दी गई सम्पूर्ण षिक्षा को पूरा कण्ठस्थ करना ही गुरुमुखी षिक्षा का उद्देश्य था। महानारायणोपनिषद् में गुरु को साक्षात् ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश का समानार्थक माना गया है। उपनिषदों के अनुसार – 'सर्वदेवमयो गुरुः', 'यो गुरुः स शिवः स गुरुः समृत', ब्रह्मगीता के अनुसार गुरु–कृपा से ही शिष्य का परम मंगल होता है। तन्त्रार्णव के अनुसार गुरु शब्द के गु + रु + उ में गकार सिद्धिदाता रेफ अर्थात् पापनाशक और उ ऊंकार अर्थात् स्वयं षिव है। आगमसार तन्त्र के अनुसार –

गकारो ज्ञान संपत्यै रेफः सत्रत्व प्रकाश

उकारात् शिव तदात्म्य दद्यादिति गुरुः स्मृतः।

अर्थात् गुरु की वाणी में भगवान अधिष्ठित होकर शिष्य को उज्जवल भविष्य तथा मोक्षदान करते हैं। श्रेष्ठ गुरु अपने दिव्य ज्ञान का अहसास तथा अनुभव शिष्यों को भी कराता है। कुलार्णव तन्त्र के अनुसार –

श्री गुरुः पदमेषानि शुद्ध वेषो मनोहरः

सर्वलक्षण सम्पन्न सर्वावयवः शोभितः ।

भारतीय संगीत में गुरु–शिष्य परम्परा को समय परिवर्तन के साथ 'घराना पद्धति' के नाम से जाना गया और योग में इसे 'धारा' या 'सम्प्रदाय' के नाम से जाना जाता है।

जब कोई गायक या वादक किसी शैली में अपनी विलक्षण क्षमता से उसमें रचनात्मकता, उपज एवं तैयारी तत्वों का समावेश कर विशिष्ट शैली का निर्माण करता है और यदि इस शैली का अनुकरण करने वाले पर्याप्त संख्या में हो तो यही शैली आगे चलकर 'घराने' में परिवर्तित हो जाती है। साधारण रूप में 'घराना' शब्द से आशय वर्ग, वंश, कुटुम्ब, परिवार, परम्परा, सम्प्रदाय, समूह, वर्ण, खानदान से है। जिस प्रकार किसी एक परिवार में जन्म लेने वाले सदस्यों का एक परिवार होता है उसी प्रकार एक ही गुरु के शिष्य एक परिवार, स्कूल के माने जाते हैं। भारतीय कण्ठ संगीत में मुख्य रूप से पाँच घराने माने जाते हैं – ग्वालियर घराना, किराना घराना, जयपुर घराना, पटियाला घराना व आगरा घराना। इसी प्रकार योग में ज्ञानयोग धारा, भक्तियोग धारा, हठयोग सम्प्रदाय, नाथ सम्प्रदाय आदि है।

इन तथ्यों के अतिरिक्त संगीत एवं योग में गुरु–शिष्य परम्परा पीढी–दर–पीढी चली आ रही घराना परम्पराओं एवं सम्प्रदायों की शैलियों, आसन (बैठक) विधि आदि को तन्त्रयोग में धारणा, ध्यान, समाधि तथा आकाष–गमन की संज्ञाएँ दी गई है। संगीत एवं योग क्रियात्मक कलाएँ है, जिसे प्रत्यक्ष अनुभव द्वारा ही क्रियात्मक प्रदर्शन के माध्यम से सीखा जा सकता है। इसी कारण भारतीय संगीत को घराना परम्परा ने आधार व संरक्षण प्रदान किया। संगीत की इस परम्परा के कारण हमारा संगीत वर्षों पुराना होने पर भी आज तक प्रभावी और असरदार है। इसी प्रकार भारतीय योग में महर्षि पतन्जलि को अष्टांग योग का प्रचार–प्रसार करने व अपनी शिष्य–परम्परा को विकसित करने का श्रेय प्राप्त है। सूफी इनायत खाँ संगीत सीखने की विशेषता प्रकट करते हुए कहते हैं ''शिष्य केवल गुरु की नकल ही नहीं करता वह अपनी आत्मा को गुरु की आत्मा पर केन्द्रित करता है। वह केवल सीखता ही नहीं है अपितु अपने गुरु से उत्तराधिकार में भी प्राप्त करता है। यहाँ गुरु–शिष्य परम्परा की साधना का महत्व स्पष्ट परिलक्षित होता है। संगीत एवं योग साधना केवल गुरु के उचित मार्गदर्षन में ही फलीभूत होती है। यद्यपि आधुनिक युग में अनेक लेखन विधियों द्वारा यथा – स्वरलिपि (नोटेशन) पद्धति, साहित्य व चित्र अथवा टेप–रिकॉर्डस, ऑडियो–वीडियो, इन्टरनेट द्वारा भी संगीत व योग सीखा जाता है; तथापि

सभी विद्वान, कलाकार तथा अध्यापक इस बात से पूर्णतः सहमत है कि संगीत व योग में निपुणता और दक्षता प्राप्त करने के लिए गुरु–शिष्य परम्परा ही सर्वोत्तम विधि है। इस प्रणाली के बिना संगीत एवं योग की शिक्षा अधूरी है। अतः संगीत एवं योग साधना में 'गुरु तत्त्व' ही सर्वाधिक आवश्यक अंग ळें

1.17 संगीत एवं योग साधना में अभ्यास एवं साधना का समान महत्व :

संगीत व योग साधना में अभ्यास एवं साधना का समान महत्व है। अभ्यास शब्द का अर्थ है – किसी कार्य को बार–बार करना। पुनः अनुशीलन, पुनरावृत्ति इत्यादि तथा साधना का तात्पर्य किसी काम को सिद्ध करने की क्रिया या भाव से है। संगीत एवं योग दोनों ही जीवन्त कला है। यह अपनी महत्ता के साथ चिरप्रवाहमान भी है। इनके लिए सिद्धि का कोई अल्पकालिक मार्ग नहीं है। इन दोनों साधनाओं में पूर्ण निष्ठा व पूर्ण समर्पण का महत्व है। संगीत एवं योग दोनों ही साधनाएँ प्राणों का विकास करती है। दोनों का आधार आध्यात्मिक है। संगीत साधना और योग साधना में निर्देशों, प्रशिक्षण तथा अभ्यास की दृष्टि से समरूपता दिखाई पड़ती है, यथा –

1. सदैव एक ही स्थान पर अर्थात् एक ही केन्द्र–बिन्दु पर ध्यान लगाना।
2. सदा एक ही आसन पर बैठकर ध्यान लगाना।
3. सदा एक ही आसनमुद्रा में ध्यान लगाना।
4. सदा निर्धारित समय पर ध्यान लगाना।
5. सदैव एक ही परिधान में ध्यान लगाना।
6. सदा एकान्त में ध्यान लगाना।

दोनों विद्याएँ अथाह परिश्रम, सच्ची लगन व त्याग की भावना से ही अपना व अभ्यासी साधक का अस्तित्व ग्रहण करती है। संगीत की साधना के लिए उत्तम समय प्रातःकाल का समय बताया गया है। इसी प्रकार प्रातःकाल की साधना योग में भी निर्दिष्ट है। जिसे ब्रह्ममुहूर्त कहते हैं। दोनों में ही सात्विक आहार का सेवन आवष्यक बताया गया है।

डॉ. सुशील कुमार चौबे के अनुसार – ''हिन्दुस्तानी संगीत की सबसे बड़ी शर्त साधना है, जो संगीत की साधना कर सकता है वह सफल संगीतज्ञ हो सकता है परिश्रम और प्रदर्षन दोनों के लिए उत्तम स्वास्थ्य बहुत आवष्यक है। शारीरिक बल और मानसिक स्फूर्ति दोनों आवश्यक गुण हैं चाहे वह गायन हो या वादन या नृत्य।''

आचार्य उत्तमराम शुक्ल कहते हैं –

''योग साधना के सहित सुर साधन तप ज्ञान ।

पुरातत्व की कल्पना ता बिनु दूर महान ।।''

अर्थात् अनेक प्रकार के योगों की साधना के साथ–साथ जब एक स्वर साधन रूपी घोर तप न किया जायेगा तब तक संगीत विषयक पुरातत्व की कल्पना भी हजारों कोस दूर रहने लगेगी। संगीत साधना को संगीतज्ञों की भाषा में रियाज शब्द से सम्बोधित किया जाता है। इस शब्द से संगीत के स्वतः स्वर, ताल और लय की साधना का अनुभव होता है। रियाज शब्द का अर्थ भी साधना, परिश्रम, मेहनत करना है।

1.18 संगीत एवं योग साधन द्वारा शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर प्रभावः

संगीत एवं योग दोनों ही शिक्षा मनुष्य के शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य से सम्बन्ध रखती है। यह दोनों स्वयं में एक विज्ञान है। अनुसंधान द्वारा विज्ञान–वेत्ताओं ने संगीत एवं योग की अनन्त, अपरिमित शक्ति को उद्घाटित किया है। इसलिए कहा जा सकता है कि संगीत एवं योग का मानव के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। भारतीय संगीत की वैज्ञानिकता का यह अत्यन्त गूढ़ रहस्य है कि स्वरों का प्रभाव मन और शरीर के पारस्परिक सन्तुलन पर पड़ता है। लोग मानसिक और शारीरिक स्तर पर स्वस्थ रहना चाहते हैं उन्हें गुनगुनाते रहना चाहिए। गीत गाने का सर्वाधिक असरदार प्रभाव दिमाग पर पड़ता है। संगीत से व्यक्ति के स्वास्थ्य पर सकारात्मक असर पड़ता है। संगीत से रक्त संचार पर भी सकारात्मक असर पड़ता है। गाना गाने से व्यक्ति का शरीर सन्तुलित और अनुशासित हो जाता है जिससे शरीर में अतिरिक्त ऊर्जा की आपूर्ति होती है। गाना एक उच्चकोटिक व्यायाम के समतुल्य है। गायन प्रक्रिया के मध्य हमारे शरीर को

प्रयास करना होता है। नियमित रूप से उसका रियाज भी करे। यदि कण्ठ बहुत अधिक सुरीला नहीं भी है तो भी अभ्यास नियमित रूप से करना चाहिए जिससे रक्त संचार में वृद्धि और पाचन–क्रिया में सुधार होता है। पक्ष और उदर की मांसपेशियाँ भी प्रभावित होती है, जिससे उनमें मजबूती आती है। इसी प्रकार योग प्रधानतः स्वस्थ्य व्यक्ति में स्वास्थ्य रक्षणार्थ प्रयोग होता है। इस प्रकार संगीताभ्यास व योगाभ्यास से मानव के समग्र स्वास्थ्य में एक नवीन प्रकार की गुणवत्ता आती है। अतः संगीत एवं योग द्वारा मानव के शारीरिक एवं मानसिक स्वास्थ्य पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

1.19 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप यह जान चुके होंगे कि संगीत और योग के गहनता, आध्यात्मिक तथा वैज्ञानिक सम्बन्ध को स्पष्ट करता है। भारतीय परम्परा में संगीत और योग दोनों का उद्‌गम वैदिक काल से माना गया है और दोनों को ब्रह्म–चिन्तन तथा आत्मसाक्षात्कार का साधन स्वीकार किया गया है। यद्यपि इनके मार्ग भिन्न हैं, परन्तु लक्ष्य एक ही कृचित्त की शुद्धि, आत्मचेतना की जागृति और मोक्ष की प्राप्ति।

संगीत नाद पर आधारित विद्या है और योग भी नाद के माध्यम से ही साध्य माना गया है। संगीत आहत नाद की साधना है, जबकि योग अनाहत नाद की साधना है। हठयोग के अनुसार नादोपासना की चार अवस्थाएँकृआरम्भ, घट, परिचय और निष्पत्तिकृबताई गई हैं, जिनके माध्यम से साधक अन्ततः ब्रह्मनाद का अनुभव करता है। नाद साधना को चित्तवृत्ति के निरोध, आत्मशोधन और आध्यात्मिक उन्नति का प्रमुख साधन माना गया है।

संगीत और योग को जोड़ने वाला मुख्य सेतु श्वसन क्रिया (प्राणायाम) है। संगीत में स्वर उत्पन्न करने का आधार श्वास है, वहीं योग में प्राणायाम के द्वारा मन और चित्त को नियंत्रित किया जाता है। नियंत्रित और संतुलित श्वास से चित्त शान्त, एकाग्र तथा स्थिर होता है। इसी प्रकार सांगीतिक नाद भी मन को शान्त और स्थिर करता है, जिससे मानसिक एवं आध्यात्मिक उन्नति संभव होती है।

अध्याय में श्रुति–स्वर व्यवस्था तथा योगिक चक्रों के सम्बन्ध का भी विवेचन किया गया है। भारतीय संगीत में एक सप्तक में 22 श्रुतियाँ मानी गई हैं, जिनसे सात स्वर उत्पन्न होते

हैं। प्राचीन एवं आधुनिक श्रुति–स्वर व्यवस्था में अंतर होने के कारण चक्र व्यवस्था में भी परिवर्तन देखा गया है। योगशास्त्र के अनुसार मानव शरीर में मूलाधार से सहस्त्रार तक विभिन्न चक्र स्थित हैं, जिनसे नाद की उत्पत्ति और आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त होता है।

इस प्रकार संगीत और योग दोनों न केवल आध्यात्मिक एवं दार्शनिक दृष्टि से, बल्कि वैज्ञानिक और मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भी परस्पर सम्बद्ध हैं। नाद, श्वास और चक्रकृये तीनों तत्व इन दोनों विधाओं के आधारस्तम्भ हैं। अंततः संगीत को नादयोग कहा गया है, जो साधक को आत्मानुभूति, मानसिक शान्ति और परम आनन्द की अनुभूति कराता है।

1.20 शब्दावली

- नाद – ध्वनि का सूक्ष्मतम रूप; भारतीय दर्शन में इसे "नाद ब्रह्म" कहा गया है।
- आहत नाद – आघात (टकराव) से उत्पन्न होने वाली ध्वनि, जैसे वाद्य या कण्ठ से निकला स्वर।
- अनाहत नाद – बिना आघात के उत्पन्न सूक्ष्म ध्वनि, जिसका अनुभव योग–साधना में होता है।
- स्वर –निश्चित आवृत्ति पर उत्पन्न मधुर ध्वनि; भारतीय संगीत के सात स्वर सा, रे, ग, म, प, ध, नि।
- श्रुति –स्वर का सूक्ष्मतम अंतर; भारतीय संगीत में एक सप्तक में 22 श्रुतियाँ मानी गई हैं।
- सप्तक – सा से नि तक सात स्वरों का समूह।
- प्राण – जीवन शक्ति; शरीर में प्रवाहित होने वाली ऊर्जा।
- प्राणायाम – श्वास–प्रश्वास के नियमन की योगिक प्रक्रिया।
- श्वसन क्रिया – ऑक्सीजन ग्रहण और कार्बन डाइऑक्साइड त्यागने की प्रक्रिया; संगीत और योग का आधार।
- चित्त – मन की चेतन अवस्था, जिसमें विचार, भावना और स्मृति समाहित होती है।
- चित्तवृत्ति – मन की विभिन्न अवस्थाएँ या विचार तरंगें।
- समाधि – योग की अंतिम अवस्था, जिसमें साधक पूर्ण एकाग्रता एवं आत्मानुभूति प्राप्त करता है।
- कुण्डलिनी – मूलाधार चक्र में स्थित सुप्त आध्यात्मिक शक्ति।
- चक्र – सूक्ष्म शरीर में स्थित ऊर्जा केन्द्र; प्रमुख सात चक्र माने जाते हैं।
- मूलाधार चक्र – शरीर का प्रथम चक्र, गुदा और लिंग के बीच स्थित।

- स्वाधिष्ठान चक्र – मूलाधार के ऊपर स्थित दूसरा चक्र।
- मणिपूर चक्र – नाभि क्षेत्र में स्थित तीसरा चक्र।
- अनाहत चक्र – हृदय क्षेत्र में स्थित चौथा चक्र।
- विशुद्धि चक्र – कण्ठ में स्थित पाँचवाँ चक्र।
- आज्ञा चक्र – भौहों के बीच स्थित छठा चक्र।
- सहस्रार चक्र – मस्तिष्क के शीर्ष पर स्थित अंतिम चक्र; आध्यात्मिक जागरण का केन्द्र।
- नादयोग – नाद (ध्वनि) के माध्यम से योग–साधना करने की प्रक्रिया।

1.21 अभ्यास प्रश्न

क. लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1.संगीत और योग के सम्बन्ध का मूल आधार क्या है?

2.आहत नाद और अनाहत नाद में क्या अन्तर है?

3.नादोपासना की चार अवस्थाएँ कौन–कौन सी हैं?

4.संगीत एवं योग को जोड़ने वाला सेतु किसे कहा गया है?

5.प्राणायाम का चित्त पर क्या प्रभाव पड़ता है?

ख. सत्य/असत्य बताइए :–

1.संगीत और योग का सम्बन्ध वैदिक काल से माना जाता है। (✔ सत्य)

2.संगीत केवल मनोरंजन का साधन है, इसका आध्यात्मिक महत्व नहीं है। (✘ असत्य)

3.आहत नाद की साधना योग में और अनाहत नाद की साधना संगीत में की जाती है।(✘ असत्य)

4.नादोपासना की चार अवस्थाएँ दृ आरम्भ, घट, परिचय और निष्पत्ति हैं। (✔ सत्य)

5.संगीत और योग को जोड़ने वाला मुख्य सेतु श्वसन क्रिया है। (✔ सत्य)

ग. रिक्त स्थान की पूर्ति :–

संगीत और योग का मूल तत्त्व –––––––––– है।(नाद)

भारतीय दर्शन में "–––––––––– ब्रह्म" की अवधारणा संगीत का आधार मानी जाती है।(नाद)

योग का मुख्य लक्ष्य चित्तवृत्तियों का –––––––––––– है।(निरोध)

संगीत और योग को जोड़ने वाला प्रमुख सेतु –––––––––––– क्रिया है।(श्वसन)

योग में श्वास के नियमन को –––––––––––– कहा जाता है।(प्रणायाम)

संगीत में ध्वनि के सूक्ष्मतम रूप को –––––––––––– कहते हैं।(नाद)

1.22 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

- भरतमुनि – नाट्यशास्त्र
- मतंग मुनि – वृहद्देशी
- पं. शारंगदेव – संगीत रत्नाकर
- पं. अहोबल – संगीत पारिजात
- दामोदर पण्डित – संगीत दर्पण
- स्वामी स्वात्माराम – हठयोग प्रदीपिका
- महर्षि पतञ्जलि – योगसूत्र
- घेरण्ड मुनि – घेरण्ड संहिता
- शिवसंहिता – (प्राचीन योगग्रंथ)
- उपनिषद – विशेषतः नादबिन्दु उपनिषद, योगतत्त्व उपनिषद
- पं. विष्णु नारायण भातखण्डे – हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति (क्रमिक पुस्तक मालिका)
- पं. विष्णुदिगम्बर पलुस्कर – संगीत बालप्रकाश / संगीत सिद्धान्त

1.23 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्रीः

- पं. विष्णु नारायण भातखण्डे – हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति (क्रमिक पुस्तक मालिका)
- पं. विष्णुदिगम्बर पलुस्कर – संगीत बालप्रकाश / संगीत सिद्धान्त
- स्वामी स्वात्माराम – हठयोग प्रदीपिका
- महर्षि पतञ्जलि – योगसूत्र

1.24 निबन्धात्मक प्रश्न

1.संगीत एवं योग के आध्यात्मिक सम्बन्ध का विस्तार से वर्णन कीजिए।

2.नादोपासना की चार अवस्थाओं का वर्णन करते हुए उनके आध्यात्मिक महत्व को स्पष्ट कीजिए।

3.श्रुति–स्वर व्यवस्था और योगिक चक्रों के सम्बन्ध का विवेचन कीजिए।

4.प्राचीन एवं आधुनिक श्रुति–स्वर व्यवस्था में अन्तर स्पष्ट कीजिए।

5.संगीत एवं योग साधना में श्वसन क्रिया के वैज्ञानिक महत्व का वर्णन कीजिए।

इकाई 2 – गायक एवं वादक के गुण एवं दोष

2.1 प्रस्तावना

2.2 उद्देश्य

2.3 गायकों के गुण एवं दोष

2.3.1 गायकों के गुण

2.3.2 गायकों के दोष

2.4 वादक के गुण एवं दोष

2.4.1 वादक के गुण

2.4.2 वादक के दोष

2.5 सारांश

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम (बी0ए0एम0एम0(एन)–223) माईनर वोकेशनल कोर्स की षष्ठम सेमेस्टर की दूसरी इकाई है।

प्रस्तु इकाई में भारतीय संगीत परम्परा अत्यन्त समृद्ध और वैज्ञानिक है, जिसका आधार नाद, स्वर, लय और भाव के समन्वय पर आधारित है। संगीत के क्षेत्र में गायक एवं वादक दोनों की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है। गायक अपनी वाणी के माध्यम से तथा वादक अपने वाद्य यंत्र के द्वारा राग, ताल और भाव को अभिव्यक्त करते हैं। इन दोनों की साधना, अभ्यास, व्यक्तित्व, मानसिकता तथा तकनीकी दक्षता संगीत की गुणवत्ता को निर्धारित करती है।

एक श्रेष्ठ गायक या वादक बनने के लिए केवल तकनीकी ज्ञान ही पर्याप्त नहीं होता, बल्कि उसमें नैतिक, मानसिक, शारीरिक तथा सांस्कृतिक गुणों का समावेश भी आवश्यक है। यदि कलाकार में उचित गुण होते हैं तो वह श्रोताओं के हृदय को स्पर्श करने में सक्षम होता है, जबकि दोष उसके प्रदर्शन को प्रभावित कर देते हैं। इस प्रकार गायक एवं वादक के गुण और दोषों का अध्ययन संगीत शिक्षा, प्रशिक्षण तथा मंचीय प्रस्तुति के लिए अत्यंत आवश्यक है।

भारतीय संगीतशास्त्र में प्राचीन काल से ही कलाकारों के गुणों और दोषों का वर्णन मिलता है, जिससे स्पष्ट होता है कि संगीत केवल कला नहीं, बल्कि साधना और अनुशासन का विषय भी है। अतः संगीत के विद्यार्थियों एवं कलाकारों के लिए यह जानना आवश्यक है कि कौन–कौन से गुण उन्हें विकसित करने चाहिए तथा किन दोषों से बचना चाहिए, ताकि वे उत्कृष्ट कलाकार बन सकें।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप :

1. गायक एवं वादक के आवश्यक गुणों का अध्ययन कर सकेंगे।
2. संगीत प्रस्तुति में आने वाले प्रमुख दोषों की पहचान करेंगे।
3. विद्यार्थियों को आदर्श कलाकार बनने हेतु प्रेरित करेंगे।
4. संगीत साधना में अनुशासन, समर्पण एवं नियमित अभ्यास के महत्व को समझ सकेंगे।

5. मंचीय प्रदर्शन की गुणवत्ता को सुधारने के उपायों का ज्ञान प्रदान करना।
6. संगीत के प्रति नैतिकता, विनम्रता और संवेदनशीलता का विकास करना।
7. संगीत शिक्षा में व्यावहारिक और सैद्धांतिक संतुलन स्थापित करना।

2.3 गायकों के गुण एवं दोष

2.3.1 गायकों के गुण

संगीतं मोहिनीरूपपमित्याहः सत्यमेव तत्।
योग्यरसभावभाषारागप्रभृतिसाधनैः।।
गायकः श्रोतृमनसि नियतं जनयेत् फलम्।
– लक्ष्य संगीत

योग्य रस, भाव, भाषा तथा राग की उचित रूप से साधना करते हुए जो गायक गाता है, उसका संगीत मोहिनी रूप होकर श्रोताओं के मन को जीतने में अवश्य ही सफल होता है। इसीलिए हमारे प्राचीन ग्रन्थकारों ने गायकों के गुण–अवगुणों का बहुत ही सुन्दर ढंग से वर्णन किया है। कहा जाता है कि इन नियमों का पालन करते हुए या इन बातों पर ध्यान देते हुए जो कलाकार अपनी कला का प्रदर्शन करता है, उनके गाने का एक अलग ही प्रभाव उनके गायन और प्रदर्शन पर पड़ता है। इसके विपरीत कुछ गायक ऐसे होते हैं जिन्होंने या तो इन नियमों का अध्ययन नही किया है या फिर वे अपनी आदतों से मजबूर होते हैं जिसके कारण वे अपनी कला प्रदर्शन में कुछ पीछे रह जाते हैं। इसका कारण यह है कि उनकी भद्दी मुद्राएँ उनकी कला का पतन करती हैं और हास्य का कारण बनती हैं।

श्रोताओं में कई तरह के व्यक्ति होते हैं। कोई श्रोता गीत की कविता पर ध्यान देते हैं, कोई गायक के सुरीलेपन पर, कोई गायन की लयकारी पर, कोई गायक के रूप–रंग पर तथा कुछ उनके हाव–भाव को देख कर ही आनन्द लेते हैं। संगीत कला एक ऐसी कला है जिसके सभी अंगों से भिन्न–भिन्न प्रकार के श्रोता अपनी–अपनी रूचि के अनुकूल रसास्वादन करते हैं। ऐसी स्थिति में निश्तिच रूप से गायकों के गुण–अवगुण उनकी कला प्रदर्शन पर अच्छा या बुरा प्रभाव अवश्य डालते हैं। इन बातों का सबसे अधिक प्रभाव संगीत के विद्यार्थियों पर पड़ता है क्योंकि वे अपने गुरू, किसी भी कलाकार तथा अपने अध्यापक के हाव–भाव पर अधिक ध्यान देते हैं और उन्हें अपनाने की कोशिश भी करते हैं। फिर चाहे वह गुण हों या अवगुण।

अतः प्रत्येक संगीत विद्यार्थी को आरम्भ से ही ध्यान देकर गायकों के गुणों को अपनाना चाहिए और अवगुणों से बचना चाहिए। क्योंकि आरम्भ में जैसी आदत पड़ जाती है वह समय के साथ या तो बढ़ती जाती है और आसानी से नही छूटती। यदि आरम्भ से ही गायक को बुरी आदतें पड़ जाएं अर्थात् तरह–तरह के भद्दे हाव–भाव बना कर गायन करने की आदत पड़ जाए तो उससे पीछा छुड़ाना मुश्किल हो जाता है और इसका परिणाम यह होता है कि उस गायक को संगीत समाज में सम्मान और सफलता कम ही प्राप्त होती है। जीवन की प्रत्येक स्थिति में गुण–अवगुण आते हैं। जिस व्यक्ति विशेष में धैर्य का फल सुंदर और शिव हो वह गुण है। जिसका प्रभाव इसके विपरीत पड़े तो वह दोष के रूप में पाया जाता है। अतः प्रत्येक विधार्थी को आरम्भ से ही गायकों के गुणों को अपनाकर अवगुणों का त्याग करना चाहिए।

लक्ष्य ग्रंथ नामक पुस्तक में गायक की स्थिति को लेकर ये श्लोक दिए हैं

भाषाऽव्यक्ता हावभावाः प्रतियंते विसंगतः।
व्यस्ताश्चेष्टास्तथाऽऽक्रोशाः केवलम् कर्कशा मताः।।
एताद्दग्गायनान्नस्यात् परिणामो ह्यभीप्सितः।
ततो हास्यरसस्यैव केवलम् स्यात् समुदभ्वः।।

उपरोक्त श्लोक का भावार्थ यह है कि भद्दे ढंग से चिल्लाकर और ऊटपटाँग हाव–भाव दिखाने से महाफिल में केवल हास्य रस का ही वातावरण पैदा होता है। भरत के नाट्य शास्त्र में ध्रुवाध्याय के पश्चात् 33वें अध्याय में गायक–वादकों के गुण तथा दोषों का विचार हुआ है। शारंगदेव ने भी मार्ग–देशी दोनों में इन गुणों का अर्न्तभाव माना है।

भरत के अनुसार– जो मार्ग और देशी संगीत दोनों को जानता है, वह मार्गी है। जो केवल मार्ग को जानता है, वह स्वरकारी है। क्योंकि स्वर–शरीर में उत्पन्न कण्ठ्य स्वर सबसे प्रथम हैं, अतः गायक को गायकत्व का ज्ञान होना चाहिए।

भरत के अनुसार गायक के गुण

प्रत्यग्रवय– युवावस्था में स्वरज्ञान की शक्ति, शीघ्र बोध या वृद्धावस्था की अपेक्षा अधिक होती है, अतः गायक को 'प्रत्यग्रवय' या यौवनशाली होना आवश्यक है।

स्निग्ध– अपरूष (कोमल) स्व र के कंठ स्निग्धता को प्राप्ता करता है।

मधुर – जो सुनते ही मन को प्रसन्न करे, ऐसे माधुर्य या मधुर स्व र से युक्त कंठ मधुर है।
उपचितकंठ – उद्वेग से रहित कंठ या सुख देने वाला स्व र 'उपचितकंठ कहलाता है।
लय – विलम्बित, मध्य तथा द्रुत लय को ठीक प्रकार से जानने वाला।
ताल – चच्च्पुट–चाचपुट आदि तालों का ज्ञाता हो अथार्त तालों के विभाग तथा मात्रा की जानकारी रखने वाला।
कला – आवाप–निष्क्राम आदि कला अथार्त ताल दिखाने का ढंग जानने वाला हो।
पात –शम्यादि (खाली) पात का ज्ञान रखने वाला हो।
प्रमाण – चित्र–वार्तिक–दक्षिण का जानकार हो। विलंबित, मध्य तथा द्रुत लय का ज्ञान हो।
योग – समपाणी–अवपाणी–उपरिपाणी का उपयुक्ता योजनाकार हो। किसी किसी के अनुसार योग का अर्थ हे लय ताल–कला–पात–प्रमाण का साम्यि होनो, दोनों ही अर्थ युक्ता है।

संगीत रत्नाकर नामक ग्रंथ में शारंगदेव ने गायक के गुण–अवगुणों के विषय में विस्तार वर्णन किया है। शारंगदेव ने गायक या गाने वाले को "गायन लक्षण" कहा है। गायक शब्द की व्युत्पत्ति के इस प्रकार है– 'गीयते अनेन इति गायनः'' । गान में 'ल्यु' प्रत्यहय लगाकर गायन शब्द की रचना हुई है। 'गायन का स्त्रीवाची है गायनी', गायन के साथ स्त्री प्रत्यय लगाकर गायनी शब्द बना है।

शारंगदेव के अनुसार गायन संगीत रत्नाकर में गायक के 22 गुण और 25 अवगुणों का उल्लेख है। इनके अतिरिक्त भी बहुत से गुण–अवगुण बताये जा सकते हैं, किन्तु यहाँ केवल मुख्य का वर्णन किया जा रहा है।

गायक के गुण–

1. मधुर कण्ठ–गम्भीर, कण और सुरीला कण्ठ होना, कम से कम अभ्यास में गाने योग्य होना बहुत बड़ा गुण है।
2. शुद्ध उच्चारण–आवाज़ लगाने तथा गीत के शब्दों का उच्चारण शुद्ध और स्पष्ट होना चाहिए।

3. स्वर और श्रुति–ज्ञान –राग में प्रयोग किये जाने वाले सभी स्वरों तथा श्रुतियों को समझने तथा गाने की क्षमता हो।
4. लय और ताल–ज्ञान –गायक लयबद्ध हो और उसे सभी प्रचलित तालों का अच्छा ज्ञान हो।
5. राग–ज्ञान–अधिक से अधिक रागों का सूक्ष्म ज्ञान हो। केवल इतना ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण रागों से बचना, अल्पत्व–बहुत्व तथा तिरभाव–आविर्भाव दिखाने की क्षमता हो।
6. समुचित अभ्यास–कम से कम इतना अभ्यास तो होना ही चाहिए कि वह अपने मन के अनुसार तान–आलाप इत्यादि गा सके।
7. स्वर, लय और भाव का सुन्दर समन्वय– गायक में यह गुण होना चाहिए कि वह अपने गायन में स्वर, लय और भाव तीनों को उचित स्थान दे।
8. रचनात्मक शक्ति – गायक में यह गुण होना चाहिए कि वह उसी समय सुन्दर तान–आलाप आदि की रचना कर सके और उनकी पुनरावृत्ति न हो।
9. श्रम–रहित और एकाग्रचित होकर गाना– गाते समय श्रोताओं को यह अनुभव न हो कि गायक को बड़ा परिश्रम करना पड़ रहा है और उसका चित्त एक स्थान पर स्थिर नहीं होता है।
10. जन–मन–रंजन– गायक में यह क्षमता होनी चाहिए कि श्रोता उसके गायन पर मुग्ध हों। उसके गाने से जनता का मनोरंजन हो। केवल कलाकार को चकित कर देना ही पर्याप्त नहीं है।
11. कण्ठ–सीमा– गायक को कण्ठ–सीमा जितनी अधिक हो, उतना ही अच्छा है। तीनों सप्तकों में शुद्ध और साफ आवाज़ लगे तथा आवश्यकतानुसार आवाज़ छोटी–बड़ी की जा सके।
12. आत्म–विश्वास– रंगमंच पर निर्भय होकर प्रत्येक परिस्थिति को देखते और समझते हुए गाना। श्रोताओं को ऐसा मालूम पड़े कि जैसे उसे स्वर व लय पर पूरा अधिकार है।
13. गायकी– उसकी गायकी अधिक से अधिक पूर्ण तथा कण्ठ के अनुसार होनी चाहिए।

14. समय, अवसर तथा श्रोताओं के अनुसार– समय, अवसर तथा श्रोताओं के अनुसार राग, गीत के शब्द, गान की अवधि, गाने की शैली आदि चुनने की क्षमता गायक में होनी चाहिए।

2.3.2 गायक के अवगुण

1. कर्कश कंठ– रूखे और तीखे कंठ का प्रभाव अच्छा नहीं पड़ता। श्रोताओं पर प्रथम प्रभाव कंठ का पड़ता है। कर्कश कंठ वाला व्यक्ति कितनी ही कलापूर्ण गायें, श्रोता पर उसका प्रभाव बहुत अच्छा न पड़ेगा।
2. बेसुरा गाना– राग के स्वर अपने स्थान पर न लगें।
3. स्वर और शब्दों का त्रुटिपूर्ण उच्चारण– आवाज़ को चिपकाना, दांत दबाकर गाना, नाक से स्वर निकालना, शुद्ध आकार न होना, शब्दों को ठीक से उच्चारण न करना आदि।
4. राग की अशुद्धता– अशुद्ध राग गाना।
5. बेताल और बेसुरा– गाते समय बेताल और बेसुरा होना।
6. समुचित अभ्यास की कमी– उचित अभ्यास की कमी।
7. पुनरावृत्ति दोष– एक बार प्रयोग किये गये स्वर समूहों को बार–बार दोहराना।
8. मुद्रा–दोष– गाते समय मुँह बनाना, हाथ टेकना, कान पर हाथ रख कर गाना, आँख बन्द कर गाना इत्यादि।
9. अव्यवस्थित गाना– गाना क्रमहीन होना।
10. आत्म–विश्वास की कमी– भयभीत होकर गाना, श्रोताओं को अपनी सब कमजोरियाँ दिखाकर गाना समाप्त करना।
11. समय, श्रोता और अवसर के अनुसार न गाना– तत्कालीन परिस्थिति का ध्यान रखकर न गाना गायक की बहुत बड़ी कमी है।
12. आवश्यकता से अधिक तैयारी दिखाना– अपने अभ्यास से अधिक तैयारी दिखाने से स्वर बेसुरे हो जाते हैं।
13. लापरवाही से गाना 7 गाते समय लापरवाही से गाना गायक की कमी है।

14. स्वर, लय और भाव के समन्वय की कमी– इनमें से किसी को आवश्यकता से अधिक महत्व देना उचित नहीं है।

15. नीरस गाना–गाने में रस की कमी आदि अवगुण है।

इस प्रकार संगीत शास्त्र में अच्छे गायक को सदैव दोषों से बचना चाहिए। उपरोक्त वर्णित दोषों में से कुछ दोष ऐसे भी हैं जो अच्छे गायक में भी पाए जाते हैं, किन्तु कला साधना में वे कुछ दोषों को दूर कर लेते हैं। अतः संगीत विद्यार्थियों को गुणदृदोषों पर सदैव ध्यान रखना चाहिए।

2.4 वादक के गुण एवं दोष

2.4.2 वादक के गुण

1. गीत, वाद्य और नृत्य में पारंगत हो।
2. भिन्न–भिन्न वाद्यों को बजाने में कुशल हो।
3. वाद्य यंत्र बनाने की जानकारी रखने वाला हो।
4. ग्रह ज्ञान रखने वाला हो।
5. अंगुली संचालन में कुशल हो।
6. ताल और लय का ज्ञान रखता हो।
7. विभिन्न वाद्य–यंत्रों के विषय में पूर्ण ज्ञान रखता हो।
8. हस्त संचालन में कुशल हो।
9. किस वाद्य यंत्र को बजाने में कौन से शारीरिक अवयव से सहायता मिलती है, इसका ज्ञान रखने वाला हो।
10. स्वरों के उतार–चढ़ाव का ज्ञान रखने वाला हो।

2.4.2 वादक के दोष

जिस वादक में उपरोक्त गुण नहीं हैं या जो वादक इन गुणों का ध्यान नहीं रखता, फिर भी किसी वाद्य को बजाने की चेष्टा करता है, वह वाद्य बजाने में सफल नहीं हो सकता। इस प्रकार उपर्युक्त गुणों का अभाव ही वादक के दोष माने गए हैं।

अभ्यास प्रश्न

(क) लघु उत्तरीय प्रश्न

1. गायक के प्रमुख गुणों का उल्लेख करें।
2. वादक के लिए लय का ज्ञान क्यों आवश्यक है?
3. स्वर शुद्धता का क्या महत्व है?
4. कलाकार के व्यक्तित्व का संगीत पर क्या प्रभाव पड़ता है?
5. मंचीय शिष्टाचार से आप क्या समझते हैं?

(ख) दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

1. गायक एवं वादक के गुणों का विस्तृत वर्णन करें।
2. संगीत प्रस्तुति में आने वाले दोषों का वर्णन करें तथा उनके निवारण के उपाय बताइए।
3. संगीत साधना में गुरु की भूमिका का वर्णन करें।

2.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप जान सकेंगे गायक एवं वादक संगीत के दो प्रमुख स्तम्भ हैं, जिनके माध्यम से राग, ताल और भाव की अभिव्यक्ति होती है। एक श्रेष्ठ कलाकार बनने के लिए स्वर–शुद्धता, लयबद्धता, अभ्यास, आत्मविश्वास, संवेदनशीलता, अनुशासन और मंचीय शिष्टाचार जैसे गुण अत्यन्त आवश्यक हैं। गायक को मधुर, स्पष्ट तथा प्रभावपूर्ण गायन के लिए वाणी पर नियंत्रण रखना चाहिए, जबकि वादक को वाद्य यंत्र पर तकनीकी दक्षता तथा ताल–लय का विशेष ज्ञान होना चाहिए।

इसके विपरीत, स्वर अशुद्धता, लय का अभाव, आत्मविश्वास की कमी, अनुशासनहीनता, अहंकार, अभ्यास की कमी तथा मंचीय शिष्टाचार का अभाव कलाकार के दोष माने जाते हैं। ये दोष प्रस्तुति की गुणवत्ता को कम करते हैं और श्रोताओं पर नकारात्मक प्रभाव डालते हैं।

इसलिए कलाकारों को निरंतर अभ्यास, गुरु मार्गदर्शन तथा आत्मनिरीक्षण द्वारा अपने गुणों का विकास और दोषों का परिमार्जन करना चाहिए।

2.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

लघु उत्तरीय प्रश्नों के उत्तर

1. गायक के प्रमुख गुण

गायक में स्वर–शुद्धता, लयबद्धता, मधुर कंठ, स्पष्ट उच्चारण, भावपूर्ण प्रस्तुति, नियमित अभ्यास, आत्मविश्वास तथा विनम्रता जैसे गुण होने चाहिए।

2. वादक के लिए लय का महत्व

वादक के लिए लय का ज्ञान आवश्यक है क्योंकि लय के बिना संगीत असंतुलित हो जाता है। लय से तालमेल, सामंजस्य और प्रभावशीलता बनी रहती है।

3. स्वर शुद्धता का महत्व

स्वर शुद्धता संगीत की आत्मा है। इससे राग की पहचान स्पष्ट होती है और श्रोताओं को मधुरता का अनुभव होता है।

4. कलाकार के व्यक्तित्व का प्रभाव

कलाकार का व्यक्तित्व उसकी प्रस्तुति को प्रभावित करता है। विनम्रता, आत्मविश्वास और अनुशासन प्रस्तुति को प्रभावशाली बनाते हैं।

5. मंचीय शिष्टाचार

मंच पर उचित आचरण, समय का पालन, वेश–भूषा तथा श्रोताओं के प्रति सम्मान को मंचीय शिष्टाचार कहा जाता है।

2.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची–

1. संगीत शिक्षा, श्रीमती विजय अरोड़ा, ए.पी. पब्लिशर्स, जालन्धर।
2. संगीत विशारद, बसंत, संगीत कार्यालय, हाथरस, उ.प्र., जनवरी 1997, 21वीं संस्करण।
3. संगीत विनोदिनी, आचार्य बृहस्पति, श्रीमती सुमित्रा कुमारी, श्रीमती सुलोचना बृहस्पति, बृहस्पति पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 1987।

2.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. गायक एवं वादक के गुण एवं दोषों का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए।
2. संगीत में अनुशासन और साधना का महत्व स्पष्ट कीजिए।
3. श्रेष्ठ कलाकार बनने के लिए आवश्यक गुणों का विस्तार से वर्णन करें।

इकाई 3 – भारतीय संगीत में थाट पद्धति

3.1 प्रस्तावना

3.2 उद्देश्य

3.3 भारतीय संगीत में मेल अथवा थाट

3.4 पं. व्यंकटमुखी के 72 थाट

3.4.1 थाट रचना विधि

3.5 पं. विष्णु नारायण भातखंडे के दस थाट

3.5.1 हिन्दुस्तानी संगीत के दस थाट एवं उनके स्वर

3.6 हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में गणितानुसार 32 थाटों की उत्पत्ति

3.7 सारांश

3.8 शब्दावली

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

3.12 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम बी0ए0एम0एम0(एन0)–223 की तीसरी इकाई है। इससे पूर्व की इकाईयों के अध्ययन के पश्चात आप संगीत एवं योग के अन्तर्संबंधों से परिचित हो चुके होंगे। आप गायक व वादक के गुण व दोषों के विषय में भी जान चुके होंगे।

इस इकाई में भारतीय संगीत में थाट पद्धति के विषय में बताया गया है। रागों के वर्गीकरण के सम्बन्ध में थाट/मेल पद्धति अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस इकाई में मेल अथवा थाट के रचना नियमों को भी बताया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप मेल अथवा थाट के अन्तर्गत आने वाले विभिन्न रागों के वर्गीकरण की पद्धति को समझ सकेंगे। वर्तमान में राग वर्गीकरण की पद्धतियों में उत्तर भारतीय संगीत में थाट एवं दक्षिण भारतीय संगीत में मेल वर्गीकरण का प्रयोग होता है। इस इकाई के अध्ययन से आप मेल अथवा थाट के रचना नियमों के आधार पर रागों को उसमें प्रयुक्त कर सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :–

- बता सकेंगे की वर्तमान में राग वर्गीकरण की पद्धति "थाट अथवा मेल वर्गीकरण" वैज्ञानिक एवं सरल है।
- समझा सकेंगे कि थाट एवं मेल वर्गीकरण पद्धति के अन्तर्गत रागों को किन आवश्यक नियमों के आधार पर वर्गीकृत किया जाता है।
- बता सकेंगे कि थाट अथवा मेल वर्गीकरण के अन्तर्गत उत्तरी एवं दक्षिणी पद्धति में कौन से प्रमुख रागों को रखा गया है।
- बता सकेंगे कि उत्तरी थाट पद्धति एवं दक्षिणी मेल पद्धति के अन्तर्गत दोनों की वर्गीकरण पद्धति के आधार पर एक नवीन पद्धति का निर्माण किया जा सकता है। जिसमें कुछ ऐसे रागों को भी स्थान प्राप्त हो जो इन पद्धतियों में प्रयुक्त नहीं हो सकते हों।

3.3 भारतीय संगीत में मेल अथवा थाट

ग्राम मूर्च्छना पद्धति के दुर्बोध होने पर मध्य युग में स्वर साम्य के आधार पर राग–वर्गीकरण प्रचार में आया। सर्वप्रथम विजय नगर के मन्त्री माधवाचार्य विद्याचरण ने तत्कालीन 50 रागों को 15 मेलों में वर्गीकृत किया। विजय नगर के ही रामामात्य ने 'स्वरमेल–कलानिधि' में 20 मेल, सोमनाथ ने 'राग विबोध' में 23 मेल, व्यंकटमुखी ने 'चतुर्दण्डी–प्रकाशिका' में अधिकतम 72 मेल बनाने की विधि देकर 19 मेल स्वीकार किए। उत्तर में 'राग–तरंगिणी' में कवि लोचन ने 12 संस्थानों(मेलों) में 75 रागों को स्वर–साम्य के आधार पर वर्गीकृत किया। पुण्डरीक विट्ठल ने 'सद्राग–चन्द्रोदय' में 19 मेल और 'राग–मंजरी' में 20 मेल स्वीकार किए हैं। भावभट्ट ने 'अनूप–संगीत–रत्नाकर' में 20 मेल माने हैं। मेलों की सबसे कम संख्या श्रीकण्ठ ने 'रस कौमुदी' में 9 मानी है। भातखण्डे जी ने उत्तरी–संगीत के लिए अधिकतम 32 मेलों या थाटों में से 10 मेल ही प्रयोग में स्वीकार किए हैं।

ठाठ शब्द से ही ठाट या थाट बना है। थाट शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम सोमनाथ ने राग–विबोध में किया है। थाट–पद्धति–वर्गीकरण का अर्थ भी स्वर–साम्य के आधार पर रागों का वर्गीकरण होता है यानी समान स्वरों वाले राग एक वर्ग में रखे जाते हैं। किसी स्वर के परिवर्तन के साथ ही थाट भी बदल जाता है। जैसे शुद्ध स्वरों वाले सभी राग बिलावल थाट के अन्तर्गत रखे जाते हैं। शुद्ध–मध्यम के स्थान पर तीव्र–मध्यम के प्रयोग से बिलावल के स्थान पर वो थाट, कल्याण हो जाएगा क्योंकि कल्याण थाट में तीव्र–मध्यम होता है।

थाट शब्द सितार आदि पर्दे वाले वाद्यों से सम्बन्धित है। जो राग बजाना होता है उससे पहले उस राग विशेष में प्रयुक्त होने वाले स्वरों को, पर्दों को खिसका कर स्थापित करना होता है। यही ठाठ बाँधना कहलाता है। ठाठ का अर्थ है ढाँचा या फ्रेम। ठाठ तैयार होने पर उस ठाठ में प्रयुक्त स्वरों से सम्बन्धित सभी राग बजाए जा सकते हैं। यानी निश्चित स्वरों वाले रागों का ढाँचा बन जाने पर बिना पर्दों को इधर–उधर किए हुए उन्हीं पर समान स्वरों वाले राग बज सकते हैं। सरस्वती वीणा आदि पर स्थिर पर्दे होते हैं इसलिए ऐसे वाद्यों को अचल–ठाठ वाले वाद्य कहा जाता है। जिनमें पर्दे खिसकाने पड़ते हैं उन्हें चल–ठाठ वाले वाद्य कहा जाता है।

3.4 पं0 व्यंकटमुखी के 72 थाट

संगीत के इतिहास से पता चलता है कि संगीत में समय–समय पर अलग–अलग तरह की शैलियों का प्रचार हुआ और उनको भिन्न–भिन्न समय में भिन्न–भिन्न वर्गीकरण के अंतर्गत बांटा गया। जैसे रागों का जाति वर्गीकरण, ग्राम वर्गीकरण, शारंगदेव 10 विधि वर्गीकरण, शुद्ध, छायालग और संकीर्ण राग मेल वर्गीकरण आदि।

मेल वर्गीकरण के अंतर्गत मेलों की संख्या के विषय में अनेक मत होने के कारण यह पद्धति धीरे–धीरे समाप्त हो गई। परन्तु 17वीं सदी में दक्षिण के निवासी पं0 व्यंकटमुखी ने चतुर्दण्डिप्रकाशिका नामक ग्रंथ में गणित द्वारा यह सिद्ध किया कि एक सप्तक से अधिक से अधिक 72 मेल या थाट बन सकते हैं। मेलों या थाटों की क्रिया को समझने के लिए इसे मुख्य रूप से चार भागों में बांटा जा सकता है :–

1. थाट की परिभाषा
2. थाट की विशेषताएं
3. स्वरों की विशेषताएं
4. थाट–रचना–विधि

थाट की परिभाषा – सात स्वरों के क्रमिक समूह, जो राग उत्पन्न करने की शक्ति रखता हो, को थाट या मेल कहा जाता है। मेल या थाट एक–दूसरे के पर्यायवाची शब्द हैं क्योंकि प्रामाणिक संगीत ग्रंथों में वर्गीकरण की इस श्रेणी के लिए मेल शब्द का प्रयोग किया गया है। अभिवनव राग मंजरी में मेल की परिभाषा इस प्रकार दी गई है–"मेल स्वर समूहः स्याद्रागव्यंजन शक्तिमान्"

मेल या थाट की विशेषताएं – पं. व्यंकटमखी ने यह स्वीकार किया कि थाट हमेशा सम्पूर्ण होना चाहिए क्योंकि यदि वह सम्पूर्ण ही नहीं होगा तो सम्पूर्ण जाति के रागों को उसके अंतर्गत कैसे रखा जा सकेगा। यहां यह भी स्पष्ट करना जरूरी है कि सम्पूर्ण से भाव 7 स्वरों

से है और यह सात स्वर किसी स्वर के दो रूपों को मिलाकर न हों। स्पष्ट अर्थों में सा रे ग म प ध नि इनमें कोई भी स्वर को छोड़ा नहीं जा सकता। थाट के सात स्वर क्रमानुसार ही होने चाहिए, जैसे – सा रे ग म प ध नि

एक स्वर के दो रूप इकट्ठे प्रयोग नहीं किए जा सकते क्योंकि दो रूप इकट्ठे प्रयोग करने से थाट सम्पूर्ण नहीं हो सकता। परन्तु पं.व्यंकटमुखी के अनुसार एक स्वर के दो रूप इकट्ठे प्रयोग किए जा सकते हैं। दो रूप इकट्ठे प्रयोग करने से किसी अन्य स्वर को तो छोड़ना ही पड़ेगा, जिससे थाट के सात स्वरों के क्रम का प्रयोग भंग हो जाएगा। इस समस्या का समाधान करने के लिए पं. व्यंकटमुखी ने एक स्वर को दो नाम देकर किया, जिससे थाट का नियम भी भंग नहीं हुआ। इसके लिए व्यंकटमुखी की स्वर तालिका देखनी जरूरी है, जिसका वर्णन स्वरों की विशेषताओं में किया गया है।

- थाट या मेल में केवल आरोह का होना ही जरूरी होता है क्योंकि उसके आरोह–अवरोह दोनों के स्वर एक जैसे ही होते हैं।
- थाट गाए/बजाए नहीं जाते इसलिए रंजकता होना जरूरी नहीं है।
- थाट या मेल का नाम उसके अंतर्गत रखे गए प्रसिद्ध राग के नाम के आधार पर रखा गया है। जैसे – बसंत, भैरवी, देशाकसी, नाट, पंतुवली, सिंहरव, कल्याणी आदि(पं. व्यंकटमखी के अनुसार)। कल्याण, तोड़ी, भैरव, भैरवी, बिलावल, काफी, खमाज, आसावरी, मारवा, पूर्वी(पं. भातखण्डे के अनुसार)।

स्वरों की विशेषताएं – स्वरों की विशेषताएं समझने के लिए पं. व्यंकटमुखी की स्वर तालिका को समझना आवश्यक है।

हिन्दुस्तानी स्वर	पं. व्यंकटमुखी के स्वर
स	स
रे कोमल	रे शुद्ध
रे शुद्ध	पंचश्रुति रे या शुद्ध ग
ग कोमल	षट्श्रुति रे या साधारण ग
ग शुद्ध	अंतर ग
म शुद्ध	म शुद्ध
म तीव्र	प्रति म
प	प
ध कोमल	ध शुद्ध
ध शुद्ध	पंचश्रुति ध या शुद्ध नि
नि कोमल	षटश्रुति ध या कैशिक नि
नि शुद्ध	काकली नी

उपर्युक्त स्वर तालिका देखने से यह पता चलता है कि व्यंकटमुखी ने भी हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति की तरह कुल 12 स्वर ही माने हैं, अन्तर केवल यह है कि पंडित व्यंकटमुखी जी ने एक स्वर के दो नाम रखे।

1. जैसे अगर किसी थाट में दोनों रे अर्थात शुद्ध रे और पंचश्रुति रे इकट्ठे प्रयुक्त होते हैं तो पहला ऋषभ ही रहेगा और दूसरा रे शुद्ध गंधार कहलाएगा।
2. जहां पंचश्रुति ऋषभ होगा वहां षट्श्रुति ऋषभ नहीं होगा।
3. जहां षट्श्रुति ऋषभ होगा वहां साधारण ग नहीं होगा।
4. जहां साधारण ग होगा वहां अन्तर ग नहीं होगा।
5. जहां शुद्ध ध होगा वहां पंचश्रुति नि नहीं होगा।
6. जहां शुद्ध नि होगा वहां षट्श्रुति ध या कैशिक नि नहीं होगा।
7. जहां कैशिक नि होगा वहां काकली नि नहीं होगा।

3.4.1 मेल या थाट रचना–विधि – व्यंकटमुखी ने एक सप्तक के 12 स्वरों सा रे॒ रे ग॒ ग म प ध॒ ध नि॒ नि सां में से तीव्र म को थोड़े समय के लिए निकाल दिया और 12 की संख्या पूरी करने के लिए तार सा जोड़ दिया। इस तरह 12 स्वरों को दो बराबर भागों में बांट लिया। पहले भाग को पूर्वांग और दूसरे भाग को उत्तरांग कहा गया।

पूर्वांग	उत्तरांग
सा रे॒ रे ग॒ ग म	प ध॒ ध नि॒ नि सां

सप्तक में तार सा जोड़ने से स्वरों की गिनती आठ हो गई। थाट रचना में सप्तक के दोनों भागों में चार–चार स्वर होने आवश्यक हैं और उन चार–चार स्वरों में स और म दोनों स्वर पूर्वांग में और प और तार स उत्तरांग में होना जरूरी है।

पूर्वांग	उत्तरांग
1. सा रे॒ रे म	1. प ध॒ ध सां
2. सा रे॒ ग म	2. प ध॒ नि सां
3. सा रे॒ ग॒ म	3. प ध॒ नि॒ सां
4. सा रे ग॒ म	4. प ध नि॒ सां
5. सा रे ग म	5. प ध नि सां
6. सा ग॒ ग म	6. प नि॒ नि सां

इस तरह सप्तक के प्रत्येक भाग में छः–छः नए स्वर स्वरूप प्राप्त हुए। पूर्वांग के प्रत्येक स्वर समूह को बारी–बारी उत्तरांग के स्वर समूहो से मिलाया जाएगा अर्थात् केवल एक स्वर समूह लेना है और उसको उत्तरांग के प्रत्येक स्वर समूह से मिलाना है। जैसे–

पूर्वांग	उत्तरांग
1. सा रे॒ रे म	प ध॒ ध सां
2. सा रे॒ रे म	प ध॒ नि सां
3. सा रे॒ रे म	प ध॒ नि॒ सां
4. सा रे॒ रे म	प ध नि॒ सां
5. सा रे॒ रे म	प ध नि सां
6. सा रे॒ रे म	प नि॒ नि सां

इस तरह पूर्वांग का तो पहला स्वर समूह लिया गया और उसको उत्तरांग के प्रत्येक स्वर समूह के साथ जोड़ा गया। उसके पश्चात् इसी तरह पूर्वांग के दूसरे स्वर समूह को

लिया जाएगा और उत्तरांग के प्रत्येक स्वर समूह से साथ जोड़ा जाएगा। इस तरह छः स्वर समूहों को बार–बार जोड़कर 6 X 6 = 36 थाट मिलेंगे। यह विधि तीव्र म स्वर लगाकर ही करनी है अर्थात शुद्ध म की जगह तीव्र म रहेगा क्योंकि उसको पहले स्वर–समूह से निकाल दिया गया था। जैसे –

पूर्वांग	उत्तरांग
1. सा रे रे म'	प ध ध सां
2. सा रे रे म'	प ध नि सां
3. सा रे रे म'	प ध नि सां
4. सा रे रे म'	प ध नि सां
5. सा रे रे म'	प ध नि सां
6. सा रे रे म'	प नि नि सां

यहां उत्तरांग के स्वरों में कोई अन्तर नहीं आएगा। पूर्वांग में शुद्ध मध्यम के स्थान पर तीव्र मध्यम का प्रयोग किया गया है। इस तरह इन स्वर समूहों से भी 36 थाट मिलेंगे। 36 थाट शुद्ध मध्यम के साथ और 36 थाट तीव्र मध्यम के साथ कुल मिलाकर 36+36=72 मिलेंगे। इस तरह व्यंकटमुखी ने गणित द्वारा 72 थाटों की रचना की। दक्षिण वालों ने 72 थाटों में से कुल 19 ही चुने, जिसके अंतर्गत अपने रागों का वर्गीकरण किया।

क्रम सं0	मेल–नाम	स्वर
1	मुखारी (हि0–स्वर)	सा शुद्ध–रे शुद्ध–ग शुद्ध–म शुद्ध–प शुद्ध–ध शुद्ध–नि सा रे रे म प ध ध
2	सामवराली (हि0–स्वर)	सा शुद्ध–रे साधा–ग शुद्ध–म शुद्ध–प शुद्ध–ध काक–नि सा रे ग म प ध नि
3	भूपाल (हि0–स्वर)	सा शुद्ध–रे साधा–ग शुद्ध–म शुद्ध–प शुद्ध–ध कैशि–नि सा रे ग म प ध नि
4	हेजुज्जी (हि0–स्वर)	सा शुद्ध–रे अन्त–ग शुद्ध–म शुद्ध–प शुद्ध–ध शुद्ध–नि सा रे रे म प ध ध
5	बसन्तभैरवी (हि0–स्वर)	सा शुद्ध–रे अन्त–ग शुद्ध–म शुद्ध–प शुद्ध–ध कैशि–नि सा रे ग म प ध

		नि
6	गौल (हि0–स्वर)	सा शुद्ध–रे अन्त–ग शुद्ध–म शुद्ध–प शुद्ध–ध काक–नि सा रे ग म प ध नि
7	भैरवी (हि0–स्वर)	सा पंच–रे साधा–ग शुद्ध–म शुद्ध–प शुद्ध–ध कैशि–नि सा रे ग म प ध नि
8	आहीरी (हि0–स्वर)	सा पंच–रे साधा–ग शुद्ध–म शुद्ध–प शुद्ध–ध काक–नि सा रे ग म प ध नि
9	श्री (हि0–स्वर)	सा पंच–रे साधा–ग शुद्ध–म शुद्ध–प पंच–ध कैशि–नि सा रे ग म प ध नि
10	कांभोजी (हि0–स्वर)	सा पंच–रे अन्त–ग शुद्ध–म शुद्ध–प पंच–ध कैशि–नि सा रे ग म प ध नि
11	शंकराभरण (हि0–स्वर)	सा पंच–रे अन्त–ग शुद्ध–म शुद्ध–प पंच–ध काक–नि सा रे ग म प ध नि
12	सामन्त (हि0–स्वर)	सा पंच–रे अन्त–ग शुद्ध–म शुद्ध–प षट–ध काक–नि सा रे ग म प नि नि
13	देशाक्षी (हि0–स्वर)	सा षट–रे अन्त–ग शुद्ध–म शुद्ध–प पंच–ध काक–नि सा ग ग म प ध नि
14	नाट (हि0–स्वर)	सा षट–रे अन्त–ग शुद्ध–म शुद्ध–प षट–ध काक–नि सा ग ग म प नि नि
15	शुद्धवराली (हि0–स्वर)	सा शुद्ध–रे शुद्ध–ग वरा–म शुद्ध–प शुद्ध–ध काक–नि सा रे रे म प ध नि
16	पन्तुवराली (हि0–स्वर)	सा शुद्ध–रे साधा–ग वरा–म शुद्ध–प शुद्ध–ध काक–नि सा रे ग म प ध नि
17	शुद्धरामक्री (हि0–स्वर)	सा शुद्ध–रे अन्त–ग वरा–म शुद्ध–प शुद्ध–ध काक–नि

		सा रे ग म प ध नि
18	सिंहरव (हि0–स्वर)	सा पंच–रे साधा–ग वरा–म शुद्ध–प पंच–ध कैशि–नि सा रे ग म प ध नि
19	कल्याणी (हि0–स्वर)	सा पंच–रे अन्त–ग वरा–म शुद्ध–प पंच–ध काक–नि सा रे ग म प ध नि
शब्द संक्षेप :– हि0=हिन्दुस्तानी, साधा=साधारण, अन्त=अन्तर, वरा=वराली, काक=काकली, कैशि=कैशिक, पंच=पंचश्रुतिक, षट=षटश्रुतिक		

3.5 पं. विष्णु नारायण भातखंडे के दस थाट

संगीत के इतिहास से पता चलता है कि रागों को भिन्न–भिन्न समयों में विभिन्न वर्गीकरणों में बांटा गया। जैसे–दस विधि राग वर्गीकरण, शुद्ध–छायालग–संकीर्ण वर्गीकरण, राग–रागिनी वर्गीकरण आदि। 17वीं सदी में व्यंकटमुखी ने गणित के द्वारा यह सिद्ध किया कि एक सप्तक में 72 थाट उत्पन्न हो सकते हैं परन्तु पंडित भातखण्डे जी ने 10 थाट चुने, जिसके अंतर्गत सारे रागों का वर्गीकरण किया।

पं. भातखण्डे जी ने पं. व्यंकटमुखी के 72 थाटों में से हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के लिए उपयुक्त दस थाट स्वीकार किए जो निम्नलिखित हैं–कल्याण, बिलावल, खमाज, भैरव, भैरवी, काफी, आसावरी, मारवा, पूर्वी और तोड़ी। सबसे पहले इन थाटों का चयन किसने किया? इस विषय में भी माना जाता है कि भातखण्डे जी ने ही सर्वप्रथम इन्हें निश्चित किया। किन्तु आचार्य बृहस्पति का कहना है कि रामपुर के पुस्तकालय में प्राप्त 'सरमाय–ए–इशरत्' नाम की पुस्तक जो सन् 1858 ई. में लिखी गई है, उसमें इन्हीं दस थाटों का उल्लेख सबसे पहले मिलता है। इस पुस्तक का उल्लेख भातखण्डे जी ने भी किया है अतः यह कहा जा सकता है कि कदाचित् भातखण्डे जी को इन दस थाटों का विचार इसी पुस्तक से मिला होगा। जो भी हो लेकिन इनका प्रचार तो निश्चित रूप से भातखण्डे जी ने ही किया है।

थाट परिभाषा – थाट या मेल एक–दूसरे के पर्यायवाची शब्द हैं। सात स्वरों का वह क्रमिक समूह, जो राग उत्पन्न करने की शक्ति रखता हो, थाट कहलाता है। हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में थाट को जनक(जन्म देने वाला) और रागों को जन्य(जन्म लेने वाला) कहा गया है। रागों के विशेष स्वर समूहों को देखकर विशेष थाट के अंतर्गत रखा जाता है। उत्तर भारतीय संगीत में थाटों की संख्या दस मानी गई है और वह हैं–कल्याण, बिलावल, खमाज, भैरव, भैरवी, पूर्वी, मारवा, काफी, आसावरी, तोड़ी। क्योंकि थाट उस स्वर–समूह रचना को कहा जाता है जो राग उत्पन्न करने की शक्ति रखता हो इसलिए थाट के विशेष नियम बनाए गए हैं।

थाट के नियम :–

1. थाट हमेशा सम्पूर्ण होना चाहिए। यदि वह स्वयं ही सम्पूर्ण नहीं होगा अर्थात् उस स्वर समूह में 7 स्वर नहीं प्रयोग किए जाएंगे तो सम्पूर्ण जाति के रागों को उसके अंतर्गत कैसे माना जा सकता है।
2. थाट में सात स्वरों को क्रमानुसार होना चाहिए जैसे स के बाद रे और रे के बाद ग इत्यादि।
3. थाट में केवल आरोह ही आवश्यक है, आरोह और अवरोह स्वर, जाति आदि रूप में कोई अंतर नहीं आता।
4. थाट को गाया–बजाया नहीं जाता इसलिए, इसमें रंजकता का होना आवश्यक नहीं।
5. थाट में एक स्वर के दो रूप(शुद्ध और विकृत) एक साथ नहीं हो सकते क्योंकि ऐसा करने से किसी और स्वर को वर्जित करना पड़ेगा, जो कि थाट के नियम के विरूद्ध है। किन्तु दक्षिणी पद्धति में ऐसा कर लिया जाता है। एक स्वर के दो रूप एक साथ प्रयोग करने के साथ ही उनका थाट सम्पूर्ण रहता है क्योंकि उन्होंने एक स्वर के दो या दो से ज्यादा नाम दिए हैं। उदाहरण के लिए अगर किसी थाट में दोनों ऋषभ अर्थात शुद्ध रे तथा चतुश्रुतिक रे प्रयोग किए जाएंगे तो पहले रे ऋषभ ही रहेगा और दूसरे को शुद्ध गन्धार कहा जाएगा। इस प्रकार राग की दृष्टि में तो हो जाता है परन्तु असल में नहीं होता क्योंकि नाम बदलने से स्वर–स्थान नहीं बदलते।
6. थाट का नाम उसके अंतर्गत माने गए किसी प्रसिद्ध राग के नाम पर रखा गया 'है, जैसे–नि रे ग म प ध नि सां ऐसे स्वर समूह को कल्याण थाट कहा गया है क्योंकि कल्याण में तीव्र मध्यम का प्रयोग किया जाता है। इसी प्रकार और रागों के नाम जिनके स्वर समूह थाट के स्वर समूहों के अनुसार थे, अर्थात् विशेष विशेषताएं थी, उन्हें रागों का नाम दिया गया है। जैसे–खमाज, काफी, भैरव, भैरवी आदि। जिन रागों के नाम के आधार पर थाट का नामकरण हुआ, उनको आश्रय राग कहा गया। थाटों की संख्या कुल 10 मानी गई है। इसलिए आश्रय राग भी 10 ही हैं।

3.5.1 हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के थाट और उसके स्वर :–

1. **बिलावल थाट** : इसमें स्वर शुद्ध ही लगते हैं। स रे ग म प ध नि।
2. **कल्याण थाट** : इसमें मध्यम तीव्र लगेगा बाकी सारे स्वर शुद्ध लगते हैं। स रे ग मं प ध नि।
3. **खमाज थाट** : इस थाट में नि कोमल बाकी स्वर शुद्ध लगते हैं। स रे ग म प ध नि।
4. **काफी थाट** : इस थाट में ग व नि कोमल बाकी स्वर शुद्ध लगते हैं। स रे ग म प ध नि।
5. **आसावरी थाट** : इसमें ग ध नि कोमल लगते हैं। स रे ग म प ध नि।
6. **भैरवी थाट** : इसमें रे ग ध नि कोमल लगते हैं। स रे ग म प ध नि।
7. **भैरव थाट** : इस थाट में रे ध स्वर कोमल लगते हैं। स रे ग म प ध नि।
8. **पूर्वी थाट** : इसमें रे ध कोमल व तीव्र म प्रयोग किया जाता है। स रे ग मं प ध नि।
9. **मारवा थाट** : इस थाट में रे कोमल, म तीव्र और बाकी स्वर शुद्ध लगते हैं। स रे ग मं प ध नि।

10. **तोड़ी थाट** : इस राग में रे ध कोमल और मध्यम तीव्र लगता है। स रे ग म॑ प ध नि।

इन थाटों में दिए गए स्वरों की तुलना उन विशेष रागों के स्वरों से न की जाए क्योंकि रागों में स्वरों का चलन विशेष राग में वर्जित स्वर, विशेष स्वर का प्रयोग आदि होता है। परन्तु थाट में ऐसा नहीं होता है। यह थाट का नियम माना जाता है।

दस थाटों की वैज्ञानिकता – भातखण्डे जी ने तो केवल इतना ही कहा कि व्यंकटमुखी के 72 मेलकर्ताओं में से हिन्दुस्तानी–पद्धति के लिए यही दस थाट उपयुक्त हैं। आगे चलकर प्रो0 ललित किशोर सिंह जो स्वयं भौतिक–शास्त्र के ज्ञाता थे, ने इन दस थाटों पर ध्वनि–विज्ञान के नियमों के अनुसार इनकी वैज्ञानिकता पर विशद् विचार किया और यह सिद्ध किया कि केवल यही दस थाट 72 मेलों में से वैज्ञानिक नियमों पर खरे उतरते हैं। यहाँ इसी बिन्दु पर कुछ विचार किया जाएगा।

1. सात शुद्ध और पाँच विकृत स्वरों में से थाट के लिए सात स्वर क्रमानुसार होने चाहिए।
2. प्रत्येक थाट में षड्ज, पंचम के अतिरिक्त दोनों मध्यमों में से किसी एक का होना आवश्यक है।
3. रे रे ग ग ध ध नि नि में से दो पूर्वांग और दो उत्तरांग में होने चाहिए।
4. शुद्ध और विकृत रूपों में से किसी एक का होना आवश्यक है।
5. उस थाट में प्रत्येक स्वर का 'षड्ज–मध्यम' या 'षड्ज–पंचम' संवाद होना आवश्यक है।
6. तीव्र मध्यम के साथ शुद्ध निषाद तथा साथ ही कोमल रे या शुद्ध गंधार का होना अति आवश्यक है।

राग और थाट की तुलना :–

1. प्रत्येक राग को किसी न किसी थाट के अंतर्गत माना गया है, जबकि थाट की उत्पत्ति सात स्वरों के समूह से होती है जिसमें स्वर में एक स्वर का कोई भी रूप(शुद्ध या विकृत) प्रयोग हो सकता है।
2. राग में कम से कम पांच और ज्यादा से ज्यादा सात स्वर प्रयोग किए जा सकते हैं, परन्तु थाट में सात स्वरों का होना जरूरी है। अगर थाट स्वयं ही सम्पूर्ण नहीं होगा तो इसके अंतर्गत सम्पूर्ण जाति के राग को कैसे रखा जा सकता है।
3. राग में स्वरों का क्रमवार होना जरूरी नहीं है। राग के चलन अनुसार विभिन्न स्वर समूहों अनुसार, वादी–संवादी के अनुसार राग में स्वरों का प्रयोग किया जाता है। थाट में सात स्वर समूहों को क्रमानुसार होना जरूरी है। जैसे – सा रे ग म प ध नि।
4. राग में आरोह–अवरोह दोनों का होना जरूरी है। केवल आरोह में राग की पहचान नहीं हो सकती क्योंकि राग के आरोह–अवरोह में स्वरों की गिनती अलग–अलग भी हो सकती है। जैसे किसी राग के आरोह में अगर सात स्वर लगते हैं तो यह जरूरी नहीं कि उसके अवरोह में भी सात स्वर ही लगेंगे अर्थात उसके अवरोह में छः या पांच स्वर भी लग सकते हैं। थाट में केवल आरोह ही आवश्यक है, आरोह और अवरोह स्वर, जाति आदि रूप में कोई अंतर नहीं आता।

5. राग में रंजकता का होना जरूरी है क्योंकि राग का मुख्य उद्देश्य रंजकता को उत्पन्न करना है परन्तु थाट में रंजकता का होना जरूरी नहीं है क्योंकि थाट गाया–बजाया नहीं जाता।
6. राग के आरोह–अवरोह में स्वरों की गिनती भिन्न होने के कारण राग की मुख्य तीन जातियां हैं– सम्पूर्ण, षाडव और औड़व। परन्तु थाट की जातियां नहीं होती क्योंकि उसके आरोह के स्वरों में कोई भी स्वर वर्जित नहीं किया जाता।
7. राग स्वतंत्र होते हैं, अर्थात उनको कोई भी नाम दिया जा सकता है। थाटों का नामकरण उसके अंतर्गत माने गए किसी प्रसिद्ध राग के नाम के आधार पर किया गया है। जैसे काफी, खमाज, बिलावल, भैरव, भैरवी आदि यही नाम रागों के भी हैं और यही थाटों के भी।
8. रागों की संख्या निश्चित नहीं है। राग नए बनते रहते हैं परन्तु थाटों की संख्या हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के अनुसार 10 है। इन 10 थाटों के अन्तर्गत ही सभी रागों को रखा जाता है।
9. थाट को जनक और उसके अंतर्गत माने गए रागों को जन्य कहा गया है।

3.6 हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति में गणितानुसार 32 थाटों की उत्पत्ति

जिस प्रकार व्यंकटमुखी ने गणितानुसार 72 थाटों की रचना की, उसी प्रकार हिन्दुस्तानी संगीत–पद्धति में गणितानुसार 32 थाटों की उत्पत्ति हो सकती है। इसका कारण यह है कि हिन्दुस्तानी संगीत–पद्धति के स्वरों में वह विशेषता नहीं है जो कर्नाटकी संगीत–पद्धति में है। अर्थात् एक स्वर के दो नाम नहीं हैं। स्वरों को क्रमानुसार रखने के लिए एक स्वर के दो रूप(शुद्ध तथा विकृत) नहीं हो सकते। इसलिए इस पद्धति के अनुसार गणित द्वारा 72 थाट न बनकर केवल 32 थाट बन सकते हैं।

सप्तक का शुद्ध मध्यम वाला 12 स्वरों का समूह स रे॒ रे ग॒ ग म प ध॒ ध नी॒ नी सां है और इसके पूर्वाद्ध तथा उत्तरार्द्ध भागों के स्वर–समूह इस प्रकार होंगेः–

पूर्वाद्ध (सा रे॒ रे ग॒ ग म)	उत्तरार्द्ध (प ध॒ ध नि॒ नि सां)
(1) सा रे॒ ग म	(1) प ध॒ नि सां
(2) सा रे॒ ग॒ म	(2) प ध॒ नि॒ सां
(3) सा रे ग॒ म	(3) प ध नि॒ सां
(4) सा रे ग म	(4) प ध नि सां

पूर्वाद्ध तथा उत्तरार्द्ध के स्वर – समूहों को मिलाने से हमको कुल 4X4=16 थाट प्राप्त होंगे। ये 16 थाट शुद्ध मध्यम के और इसी प्रकार 16 थाट तीव्र मध्यम के होंगे। अब कुल मिलाकर 16+16=32 थाट हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति के स्वरों के अनुसार बन सकते हैं।

उपर लिखे थाट गणित द्वारा निकाले गए हैं, पर इनको हिन्दुस्तानी संगीत–पद्धति में मान्यता प्राप्त नहीं है। केवल इनमें से 10 थाटों को हिन्दुस्तानी संगीत ने ग्रहण किया है। कहने का तात्पर्य यह है कि हिन्दुस्तानी संगीत–पद्धति में केवल 10 थाट माने जाते हैं और

उन्हीं 10 थाटों के अन्तर्गत सब राग गाए व बजाए जाते हैं। ये दस थाट हैं–कल्याण, बिलावल, खमाज, काफी, पूर्वी, मारवा, भैरव, आसावरी, भैरवी तथा तोड़ी। आधुनिक समय में इन 10 थाटों पर खूब वाद–विवाद चल रहा है। कुछ लोगों का विचार है कि बहुत से राग इन थाटों के अन्तर्गत नहीं आ सकते, इसलिए इन थाटों की संख्या बढ़ानी चाहिए। परन्तु अभी तक कोई ऐसा सुझाव नहीं मिल सका है जो सर्वमान्य हो।

इसी प्रकार कर्नाटकी संगीत–पद्धति में 72 थाट व्यंकटमुखी ने गणित द्वारा निकाले हैं पर उन्हें शास्त्रीय नहीं कहा जा सकता। कुछ लोग तो थाट में आरोह–अवरोह दोनों रखकर गणित द्वारा कर्नाटकी पद्धति के अनुसार कुल 72X72=5184 थाट बनाते हैं। परन्तु ये सब शास्त्रीय नहीं हैं। 72 थाटों में से केवल 19 थाट दक्षिणी संगीत–पद्धति में माने जाते हैं, जिनके अन्तर्गत ही वहाँ के सब राग गाए व बजाए जाते हैं। ये 19 मेल अथवा थाट (1)मुखारी (2)भूपाल (3)सालबरीली (4)गौल (5)अहोरी (6)बसन्तभैरवी (7)श्रीराग (8)भैरवी (9)कांभोजी (10)शंकराभरण (11)सामन्त (12)हैजुज्जी (13)नाट (14)शुद्धबराली (15)देशाक्षी (16)पंतुवराली (17)सिंहरव (18)शुद्ध रामक्रिया (19)कल्याणी, कर्नाटकी संगीत में प्रचलित हैं।

अभ्यास प्रश्न

क. लघु उत्तरीय प्रश्न :–

1. पं. भातखंडे के दस थाटों की वैज्ञानिकता को समझाइए।
2. हिन्दुस्तानी संगीत के दस थाटों में लगने वाले स्वरों को बताइए।
3. राग एवं थाट के अन्तर को स्पष्ट कीजिए।
4. मध्ययुग में मेल अथवा थाट वर्गीकरण का क्या अस्तित्व था।

ख. सत्य/असत्य बताइए :–

1. संगीत रत्नाकर में 21 मेल माने गए हैं।
2. दक्षिण संगीत पद्धति में 72 थाटों में से 19 का ही प्रयोग होता है।
3. थाट पद्धति के नियमानुसार थाट हमेशा सम्पूर्ण होना चाहिए।
4. मारवा थाट में मध्यम स्वर शुद्ध होता है।

ग. रिक्त स्थान की पूर्ति :–

1. रे ग ध नि स्वर कोमल _____ थाट में होते हैं।
2. हिन्दुस्तानी संगीत का शुद्ध ग दक्षिणी संगीत के _____ ग के समान है।
3. पं. व्यंकटमुखी ने _____ ग्रन्थ में 72 थाटों की रचना की है।
4. रामामात्य ने स्वरमेल कलानिधी में _____ मेलों की रचना बताई है।

3.7 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप भारतीय संगीत में थाट पद्धति के विषय में जान चुके होंगे। रागों का पारिवारिक वर्गीकरण मध्ययुग की उपज है। रागों के वर्गीकरण के मेल राग वर्गीकरण की पद्धति दक्षिणी संगीत की महत्वपूर्ण देन है। रामामात्य, लोचन, विट्ठल, सोमनाथ, व्यंकटमुखी इत्यादि पण्डित इसी पद्धति के समर्थक रहे। आरम्भ में 15 मेल माने गए तथा बाद में पं. व्यंकटमुखी ने सप्तक के अन्तर्गत 12 स्वर स्थानों के आधार पर 72 मेलों

की रचना की। उत्तरी संगीत में मेल राग वर्गीकरण मान्य नहीं रहा। वर्तमान शताब्दी में पं. भातखंडे जी ने 72 मेलों से वर्तमान आवश्यकतानुसार केवल 10 मेलों या थाटों को पर्याप्त माना। आधुनिक काल में प्रचलित राग वर्गीकरण पद्धतियों में थाट पद्धति ही व्यापक तथा सुविधाजनक होने के कारण उपयुक्त मानी जाती है। पं. वि.नारायण भातखंडे जी ने संगीत के सिद्धांतों व क्रियात्मक रागों के स्वर रूपों को समझाते हुए कहा कि आवश्यकतानुसार गुणि जनों की राय से अधिक थाटों की संख्या निश्चित की जा सकती है। अतः इन्होंने उत्तर भारतीय संगीत को व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत करने में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह किया। आप थाट पद्धति के नियमों से भी परिचित हो चुके होंगे।

3.8 शब्दावली

1. द्विश्रुतिक, त्रिश्रुतिक एवं चतुर्श्रुतिक – भारतीय शास्त्रीय संगीत में सात स्वर विभिन्न श्रुतियों पर स्थापित माने गए हैं। प्राचीन समय से 22 श्रुतियों का प्रचलन था। प्रत्येक स्वर की श्रुतियाँ भिन्न–भिन्न हैं। जैसे–षड़ज एवं पंचम, चतुर्श्रुतिक हैं; गन्धार एवं निषाद, त्रिश्रुतिक तथा धैवत एवं ऋषभ, द्विश्रुतिक हैं।

2. आश्रय राग – जनक राग, मेल राग(थाट का समान राग)

3. शुद्ध, छायालग, संकीर्ण – अपने मूलभूत स्थान पर स्थित राग(शुद्ध), वह राग जिस पर किसी अन्य राग की छाया हो(छायालग) तथा समिश्र राग प्रकार (संकीर्ण) कहलाते हैं।

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

ख. सत्य/असत्य बताइए :–

1 असत्य 2. सत्य 3. सत्य 4. असत्य

ग. रिक्त स्थान की पूर्ति :–

1 भैरवी 2. अन्तर 3. चतुर्दण्डी प्रकाशिका 4. 20

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. परांजपे, शरच्चन्द्र श्रीधर, (1969), भारतीय संगीत का इतिहास, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।

2. वसन्त, (1997), *संगीत विशारद*, संगीत कार्यालय, हाथरस।

3. परांजपे, डॉ0 शरच्चन्द्र श्रीधर, (1972), *संगीत बोध*, मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोपाल।

4. गोबर्धन, शान्ति, (1995), *संगीत शास्त्र दर्पण भाग–2*, पाठक पब्लिकेशन, इलाहाबाद।

3.11 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. भातखंडे, पं0 विष्णु नारायण, *संगीत पद्धतियों का तुलनात्मक अध्ययन*, संगीत कार्यालय, हाथरस।

2. चौधरी, डा0 सुभद्रा, *संगीत संचयन*, कृष्णा ब्रदर्स, अजमेर, राजस्थान।

3.12 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पं. भातखण्डे द्वारा निर्मित दस थाटों की विस्तार से व्याख्या कीजिए तथा उनकी विशेषताएं एवं रचना
   नियम भी समझाइए।
2. पं. व्यंकटमुखी के 72 थाटों की रचना विधि का सविस्तार वर्णन कीजिए।

इकाई 4 – बृहद्देशी एवं संगीत पारिजात ग्रन्थों का संक्षिप्त अध्ययन

4.1 प्रस्तावना

4.2 उद्देश्य

4.3 मतंग कृत 'बृहद्देशी' ग्रन्थ का अध्ययन

4.4 अहोबल कृत संगीत पारिजात ग्रन्थ का अध्ययन

4.5 सारांश

4.6 शब्दावली

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

4.8 संदर्भ ग्रन्थ सूची

4.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम बी0ए0एम0एम0(एन0)–223 की चौथी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप गायक व वादक के गुण व दोषों के विषय में जान चुके होंगे। आप भारतीय संगीत की थाट पद्धति के विषय में भी जान चुके होंगे।

प्रस्तुत इकाई में भारतीय संगीत के कुछ प्रसिद्ध ग्रन्थों का विस्तृत वर्णन दिया गया है। वैदिक काल के अन्तिम काल खण्ड तक संगीत से सम्बन्धित कोई स्वतंत्र ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। वेदों में ऋग्वेद में गीत, वाद्य और नृत्य के विषय में चर्चा मिलती है। सामदेव में सबसे अधिक गायन से सम्बन्धित चर्चा की गई है। इसके पश्चात संगीत से सम्बन्धित अनेक ग्रन्थों की रचना हुई। इस इकाई में मतंग के 'बृहद्देशी' एवं पं0 अहोबल कृत 'संगीत पारिजात' ग्रन्थों का अध्ययन प्रस्तुत है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप प्राचीन संगीत पर दृष्टि डालने वाले इन ग्रन्थों के महत्व को समझा सकेंगे तथा इनमें जो प्राचीन एवं मध्यकालीन विद्वान संगीत चिन्तकों के विचारों का सम्यक विश्लेषण कर सकेंगे।

4.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के पश्चात आपः–

- बता सकेंगे कि प्राचीन एवं मध्यकालीन समय में संगीत का क्या अस्तित्व था।
- समझा सकेंगे कि संगीत के अन्तर्गत स्वर, राग, गायन शैलियों का स्वरूप किस प्रकार शनै–शनै विकसित हुआ है।
- गायन एवं वादन के विषय में प्राचीन संगीत मनीषियों के ज्ञान एवं विचारों का विश्लेषण कर सकेंगे।

4.3 मतंग कृत 'बृहद्देशी' ग्रन्थ का अध्ययन

मतंग का काल 5 से 7 शताब्दी के बीच का माना जाता है। मतंग के ग्रन्थ का नाम 'बृहद्देशी' है जिसमें आठ अध्याय हैं। ताल और वाद्य पर भी इस ग्रन्थ में विचार किया गया है। मतंग ने कश्यप, नन्दी, कोहल, दत्तिल, वल्लभ, विशाखिल इत्यादि पुर्वाचार्यों की चर्चा अपने ग्रन्थ में की हैं।

बृहद्देशी नाट्यशास्त्र के पश्चात महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। 'बृहद्देशी' नाम से ही प्रतीत होता है कि इस ग्रन्थ में देशी संगीत का विवरण है।

ग्रन्थ के आरम्भ में ही महर्षि मतंग 'देशी' के विषय कहते हैं। ग्राम रागों से भिन्न भाषा, विभाषा आदि रागों का वर्णन मतंग ने दिया है (मतंग ने इसे याष्टिक उवाच कहकर तथा शार्ङ्गल के मत से प्रस्तुत किया है)।

देशी संगीत – मतंग मुनि के ग्रन्थ का नाम ही बृहद्देशी है। यानि देशी संगीत का वर्णन करने वाला विस्तृत ग्रन्थ। मार्ग का अर्थ है– रास्ता। अर्थात जो संगीत आध्यात्म के मार्ग की ओर ले जाने में सहायक हो, जिसकी खोज ब्रह्मा आदि देवताओं ने की हो तथा जिसका उद्देश्य ईश्वर प्राप्ति हो और जिसके नियम कठोर हो वह मार्ग संगीत है। इसके विपरीत जो संगीत वाग्येयकार द्वारा रचा गया हो। जिस संगीत का उद्देश्य जन–मन–रंजन हो, जो परिवर्तनशील हो, जिसके नियम कठोर न हो और

अलग–अलग देशों या प्रान्तों में अलग–अलग प्रकार का हो, वह देशी संगीत है। मतंग के अनुसार बाल–गोपाल और स्त्रियों द्वारा तथा राजांज्ञा से जो संगीत गाया जाता है वह देशी संगीत है। इस नियम से लगता है कि बाल–गोपाल और स्त्रियाँ तो लोक–संगीत ही गायेंगे। इस बात से संकेत मिलता है कि देशी संगीत का अर्थ लोक–संगीत भी हो सकता है। पर वास्तव में ध्यान देने पर यही अनुभव होता है कि देशी संगीत का अर्थ आज का लोक–संगीत नहीं बल्कि उस समय यह शास्त्रीय संगीत का ही रूप था। अतः देशी संगीत का तात्पर्य शास्त्रीय संगीत से है न कि लोक–संगीत से। क्योंकि मतंगमुनि ने जिस संगीत का वर्णन किया है वह रागदारी संगीत ही हैं न कि लोक–संगीत।

सामवेद से उत्पन्न सामगान से उत्पन्न जो संगीत था वह लौकिक संगीत कहलाता था। उसके दो भाग थे – गंधर्व और गान। मतंगकाल तक आते–आते गंधर्व का स्थान मार्ग संगीत ने ले लिया तथा गान का देशी संगीत ने। मतंग के समय तक संगीत ने नाट्य से स्वतंत्र स्थान प्राप्त कर लिया था। अतः मतंग ने बृहद्देशी में ध्रुवाओं का वर्णन नहीं किया है वरन् उसके स्थान पर देशी रागों में प्रबन्ध पर विस्तृत वर्णन किया है।

देशी राग वर्गीकरण – मतंग ने चार वर्णों में देशी रागों का विभाजन किया है– रागांग, भाषांग, क्रियांग और उपांग। इनमें से पहले तीन वर्णों का उल्लेख उन शब्दों की निरूक्ति और उनके अनुसार राग वर्गीकरण मतंग से लिया गया है। बृहद्देशी में उपांग अलग से नहीं कहे गये है।

1. **रागांग** – ग्राम रागों की छाया जिन रागों में दिखाई दे वे रागांग कहलाये।
2. **भाषांग** – भाषा रागों की छाया लेकर जिन रागों की उत्पत्ति हुई वे मतंग के अनुसार भाषांग कहलायें।
3. **क्रियांग** – जिन रागों से चित में करूणा, उत्साह, शोक आदि क्रिया उत्पन्न होती है वे क्रियांग राग होते हैं।
4. **उपांग** – जैसे रागांगों का ग्राम रागों से, भाषांगों का भाषा रागों से और क्रियांगों का क्रिया से सम्बन्ध जुड़ा है। उस तरह उपांग का किसी से सम्बन्ध नहीं कहा गया है। मतंग ने उपांग अलग से नहीं कहे हैं।

श्रुति एवं स्वर – ग्राम मूर्च्छना व्यवस्था में स्वरों की स्थापना उनकी अन्तिम श्रुति पर होती थी। मतंग ग्राम मूर्च्छना व्यवस्था को भी मानते हैं। उत्तर व दक्षिण के मेल वर्गीकरण को मानने वाले भी स्वरों की स्थापना उनकी अन्तिम श्रुति पर ही करते हैं। जिससे षड्ज ग्राम के स्वर लगभग काफी के समान प्राप्त होते हैं। प्राचीन मत तथा मतंग के अनुसार भी स्वरों की श्रुतियाँ अवरोह क्रम में थी जिससे षड्ज ग्राम के स्वर काफी ठाठ के रूप में प्राप्त होते थे। अवरोह क्रम से तात्पर्य यह है कि षड्ज की चार श्रुतियाँ है तो अवरोह क्रम से 4, 3, 2, 1 षड्ज की श्रुतियाँ हुई। इसके विपरीत वर्तमान में आरोह क्रम में स्वर अपनी प्रथम श्रुति पर स्थापित किये जाते है। जैसे षड्ज की 4 श्रुतियाँ हैं तो षड्ज प्रथम श्रुति पर है और दूसरी, तीसरी, चौथी श्रुति तक षड्ज का क्षेत्र है। कहने का भाव यह है कि प्राचीन मत के स्वरों की श्रुतियाँ अवरोह में अपने से पूर्व के स्वर तक थी। जैसे षड्ज की श्रुतियाँ षड्ज एवं कोमल निषाद के मध्य होती थी। मतंग ने भरत के समान ही स्वरों की व्याख्या अपने ग्रन्थ में की है।

ग्राम मूर्च्छना – मतंग ने भरत के समान ही पृथ्वी पर षड्ज और मध्यम दो ही ग्राम स्वीकार किये है। गान्धार ग्राम के लिए कहा है धरती में इसका लोप हो चुका है। षड्ज ग्राम में षड्ज मध्यम, पंचम की चार–चार, ऋषभ–धैवत की तीन–तीन और गान्धार निषाद की दो–दो श्रुतियाँ होती है। प्रत्येक स्वर के अन्तिम श्रुति पर स्थित होने के कारण षड्ज ग्राम के स्वर आज के लगभग काफी के समान होते हैं। मध्यम ग्राम का वर्णन मतंग ने भरत के समान ही किया है।

द्वादष स्वर मूर्च्छनावाद – 'बृहद्देशी' में प्राचीन मूर्च्छना की चर्चा भी की गई हैं। मतंग ने भरतोक्त सप्त मूर्च्छना के आकार को विस्तृत करके उसे द्वादश (12) स्वर मूर्च्छना मानने पर बल दिया है। इस 12 स्वर की मूर्च्छना में सात स्वर एक सप्तक के तथा पांच स्वर अन्य सप्तकों के सम्मिलित हैं। जैसे ध़ नि़ सा रे ग म प ध नि सां रें गं। ये द्वादश स्वर मूर्च्छना 'नन्दिकेश्वर' मत कहा जाता है। आचार्य अभिनवगुप्त ने द्वादश स्वर मूर्च्छनावाद का युक्तियुत्त खंडन किया है। इसके पश्चादवर्त्ती आचार्यों ने भी द्वादश–स्वर मूर्च्छनावाद की उपेक्षा की है। पं0 शारंगदेव ने जातियों के रूप तो मतंग इत्यादि आचार्यों से लिए हैं, परन्तु मूर्च्छना सप्त स्वर ही मानी है। मतंगमुनि ने मूर्च्छना का विस्तार सात से बारह स्वरों तक कर दिया। उन्होंने दो स्वर मन्द्र सप्तक के तथा तीन स्वर तार सप्तक के मिलाकर कुल 12 स्वरों वाली मूर्च्छना कही है। जैसे– यदि आज केवल मध्य सप्तक के बिना मन्द्र निषाद के यमन और पूरिया, बसन्त, परज आदि को बिना तार सप्तक के स्वरों के गाया जाय तो अपेक्षाकृत कठिन होगा। इन्ही आवश्यकताओं को देखते हुए मतंगमुनि ने द्वादश स्वर मूर्च्छना प्रणाली का प्रचार किया। जिन रागों या जातियों में मूर्च्छना, षड्ज आदि, धैवत आदि या किसी अन्य स्वर से कही गई है वहाँ 12 स्वरों वाली मूर्च्छना ही होती है। सबसे बड़ी कठिनाई द्वादश मूर्च्छना प्रणाली में यह है कि इसके स्वर ही ज्ञात करना द्रुष्कर है। क्योंकि षड्ज ग्राम की उत्तरमन्द्रा, रजनी आदि मूर्च्छनाएँ जो कि स, नि, ध, प, म, ग, रे से आरम्भ होती थी वे द्वादश स्वर मूर्च्छना पद्धति में ध, नि, सा, रे, ग, म, प से क्रमशः आरम्भ होती है। मध्यम ग्राम की सौवीरी आदि मूर्च्छनाऐं म, ग, रे, सा, नि, ध, प से आरम्भ होती है। द्वादश स्वर मूर्च्छना विधान में नि, सा, रे, ग, म, प, ध से क्रमशः प्रारम्भ होती है। चूँकि इस विधान से तो मूर्च्छनाओं के स्वरों को ज्ञात करना अत्यधिक कठिन है, सम्भवतः इसलिए मतंग के परिवर्ती ग्रन्थकारों ने द्वादश स्वर मूर्च्छना अस्वीकार कर सप्त स्वर मूर्च्छना को ही स्वीकार कर लिया।

गीति – अपने ग्रन्थ में मतंग ने 'गीति' शब्द का प्रयोग किया है जिससे अभिप्राय है स्वरों के विशेष प्रकार का चलन। ऐसी सात स्वराश्रया गीतियों का उल्लेख मतंग ने किया है जो इस प्रकार है– शुद्ध; भिन्ना, गौड़ी, रागंगीति, साधारणी, भाषा गीति, विभाषा गीति।

1. **शुद्ध गीति** – शुद्ध गीति में स्वरों का चलन बिल्कुल सीधा तथा मधुर होता था। इसमें मन्द्र, मध्य तथा तार तीनों सप्तकों में सहज आकर्षित करने वाले स्वरों का प्रयोग होता था। शुद्ध गीति को पूर्ण कहा गया है।
2. **भिन्ना** – इसका चलन सीधा नहीं होता था तथा इसमें गमकयुक्त वक्र स्वरों का प्रयोग होता था।

3. **गौड़ी गीति** – यह गीति काफी कठिन थी। इसमें स्वरों का चलन बिना ठहराव के तीनों सप्तकों में होता था तथा ओहाटी शैली का भी जोरदार प्रयोग होता था। ह तथा ओ संयोग का संयोग ओहाटी में होता था। ओहाटी शैली से तात्पर्य मन्द्र सप्तक में स्वरों का विशेष प्रकार से कम्पन होता था तथा ओंकार या हाकार का उच्चारण भी होता था। इसमें स्वरों का कम्पन बढ़ाते हुए द्रुत तथा द्रुततर गति में गाया जाता था। ऐसा मत है कि गौड़ देश के लोग इस प्रकार की गीति का प्रयोग करते थे इसलिये इसका नाम 'गौड़ी गीति' रखा गया।

4. **राग गीति** – इसमें स्वरों का चलन 4 वर्णों, स्थायी, आरोह, अवरोही, संचारी में तेजी से होता था। यह नीति पं0 शारंगदेव द्वारा बेसरा के नाम से बताई गई हैं। ऐसा कहा जाता हैं कि टप्पा शैली का चलन इस गीति से मिलता–जुलता था।

5. **साधारण गीति** – यह गीति उपरलिखित 4 गीतियों के सम्मिश्रण से बनी थी। ऐसा कहा जाता है कि ख़्याल शैली की विशेषताएँ इस गीति में विद्यमान थी।

6. **भाषा** – मतंग के अनुसार भाषा का अर्थ है ग्राम रागों का आलाप प्रकार। यानि ग्राम रागों को गाने के विभिन्न प्रकार।

7. **विभाषा** – विभाषा और अन्तरभाषा शब्दों की व्याख्या नहीं मिलती। भाषा के बाद विकसित हुए एवं भाषाओं की अपेक्षा इन में तथा ग्राम रागों में व्यवधान और भी ज्यादा होने से इन्हें भाषा में रखकर विभाषा कहा गया।

राग – 'राग' को सर्वप्रथम परिभाषित करने का श्रेय मतंग को है। उनसे पहले भरतमुनि इत्यादि आचार्यों ने राग की परिभाषा नहीं दी है। बृहद्देशी में मतंग द्वारा दी गई ये परिभाषा आज भी उसी प्रकार विख्यात् और प्रचलित है जिस प्रकार उनके युग में थी। ये परिभाषा इस प्रकार है–

यो ऽसौ ध्वनि विशेषस्तु स्वर वर्ण विभूषितः।
रजंको जन चित्तानां स च राग उदाहृत।।

भावार्थः ध्वनि की वह विशेष रचना जो स्वर और वर्ण से विभूषित हो और जो जन के चित्त का रंजन कर सके उसे 'राग' कहते हैं।

स्वर से तात्पर्य है संगीत के उपयोग में आने वाले स्वर।

वर्ण – गाने की प्रत्यक्ष क्रिया को वर्ण कहते हैं। वर्ण चार प्रकार के हैं– स्थायी, आरोही, अवरोही, संचारी।

इनसे पहले राग का उल्लेख इस विशेष रूप में कभी नहीं किया गया। इस समय तक राग विकसित हो चुका था। यह बृहद्देशी में उल्लिखित रागों से स्पष्ट होता है। महर्षि मतंग ही सभी रागों के निर्माता थे ऐसा नहीं कहा जा सकता क्योंकि मतंग से पूर्व अनेक ग्रन्थकार हुए हैं जैसे दत्तिल, कोहल, याष्टिक, दुर्गाशक्ति तथा कश्यप इनके मतों का उल्लेख मतंग तथा अन्य पश्चात्वर्ती ग्रन्थकारों ने किया है। इन मनीषियों द्वारा वर्णित ग्राम राग, भाषा, विभाषा, अंतरभाषा का वर्णन बृहद्देशी में मिलता है।

जाति – मतंग द्वारा दी गई जाति की परिभाषा यहाँ उद्धृत है–

स्वरा एवं विशिष्टा सन्निभाजों रक्तिमदृष्टाभ्युदयंच जनयन्तो
जातिरित्युक्तः। कोऽसो सन्निवेश इतिचेत् जातिलक्षणेन
दशकेन भवति सन्निवेशः।

अर्थात् स्वर ही जब विशिष्ट बनकर और सन्निवेश गत होकर रंजकता और अदृष्ट अभ्युदय का उत्पन्न करते हैं, तब वे जाति कहलाते है। सन्निवेश से क्या अभिप्राय है? स्वयं अभिनव इसे स्पष्ट करते हैं उनका कथन है।

मतंग के समय में रागों के गायन का प्रचलन अधिक हो गया था अतः जाति के लक्षणों का प्रयोग राग के लक्षणों में भी किया गया। बृहद्देशी में इसी बात का संकेत हमें मिलता है। भरत के द्वारा रागों का उल्लेख न किए जाने के कारण यह नहीं कहा जा सकता कि राग उस समय अस्तित्व में नहीं था।

मतंग द्वारा बृहद्देशी में भरत मुनि का ही अनुसरण किया गया है। अन्यतम तथ्य यह भी है कि राग के लक्षणों में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। ये लक्षण जाति लक्षणों के ही समान हैं।

महर्षि मतंग द्वारा रचित बृहद्देशी में सर्वप्रथम जाति की परिभाषा उपलब्ध होती है जो निम्नविध है–

'श्रुतिग्रहस्वरादि समूहाज्जायते जातयः। अतो जातय इत्युच्यते। यस्माज्जायते रस प्रतीतिरारभ्यत्ते इति वा(यतः ? तयः) अथवा सकलस्य रागादेर्जन्महेतुत्वाज्जातय इति। यदा जातय इति जातयः। यथा नराणां ब्राह्मणत्वादयो जातयः। शुद्धाश्च विकृताश्चैवमत्रापि जाति लक्षणम्।

अर्थात जो श्रुति, ग्रह व स्वर आदि के समूह से जन्म पाती हो, जिससे रस प्रतीति की उत्पत्ति अथवा रस प्रारम्भ हो, और जो सभी रागों के जन्म का कारण हो, उसे जाति कहा गया है। यहाँ जाति शब्द का सामान्य अर्थ लिया गया है, जैसे कि मनुष्यों में ब्राह्मणत्वादि जातियाँ होती हैं।

वाद्य – मतंग सत्पतंत्री वीणा 'चित्रा' के वादक थे। भरत कोष के सम्पादक राम कृष्ण कवि के अनुसार किन्नरी वीणा के अविष्कारक मतंग ही थे। उनके अनुसार मतंग से पूर्व वीणा पर परदे नहीं होते थे। इन्होंने सबसे पहले वीणा पर सारिकाएं रखी। मतंग की वीणा पर 14 पर्दे थे। किन्नरी वीणा आदिम सारिकायुक्त वाद्य है। किन्नरी वीणा के तीन भेद लोक में प्रचलित हुए– बृहती किन्नरी, मध्यमा किन्नरी, लघ्वी किन्नरी। शारंगदेव ने किन्नदी का देशी रूप पृथक बताया हैं। वहाँ देशी शब्द का तात्पर्य शारंगदेव के युग में प्रचलित किन्नरी से हैं।

'संगीत राज' में महाराणा कुम्भ ने किन्नरी वीणा के सम्बन्ध में केवल मतंग के मत का उल्लेख किया है।

4.4 संगीत पारिजात ग्रन्थ का अध्ययन

इस ग्रन्थ के लेखक पण्डित अहोबल हैं। लेखक ने अपने तथा रचना–काल के विशय में कुछ नहीं कहा है पर वर्णित सामग्री को देखते हुए काल व स्थान का किसी हद तक निर्धारण किया जा सकता है।

काल – संगीत–परिजात के उद्धरण पं0 श्रीनिवास और भावभट्ट ने दिए हैं।। भावभट्ट ने श्रीनिवास को भी उद्धृत किया है। भावभट्ट का रचना–काल सत्रहवीं शताब्दी का अन्तिम दशक है, अतः कहा जा सकता है कि पं0 अहोबल ने संगीत–पारिजात की रचना सत्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्ध में की होगी। अधिकांश संगीत के ग्रन्थों में संगीत–पारिजात का समय सन् 1650 ई0 दिया गया है। हमारे विचार से इसका रचनाकाल एक दो दशक और पहले का होना चाहिए ।

स्थान – यद्यपि संगीत–पारिजात उत्तर भारत का ग्रन्थ है पर विशय वस्तु को ध्यान से देखने पर ज्ञात होता है कि पं0 अहोबल उत्तर व दक्षिण दोनों पद्धतियों के जानकार थे या सम्भव है कि वे दक्षिण से आ कर उत्तर में बसे हों।। संगीत–पारिजात में भी मुखारी मेल (हिन्दुस्तानी सा रे रे म प ध ध सां) दक्षिण वाले स्वरों में ही मिलता है। अहोबल ने और भी कुछ रागों में दक्षिण की भाँति कोमल–ऋषभ व शुद्ध–ऋषभ एक के बाद एक का प्रयोग रागों के वर्णन में दिया है। अतः कहा जा सकता है कि अहोबल पर दक्षिणी–संगीत का प्रभाव था। वैसे सम्पूर्ण ग्रन्थ उत्तर भारत के संगीत का ही विवेचन करता है।

शुद्ध–सप्तक – संगीत–पारिजात का शुद्ध–सप्तक वर्तमान काफी के समान था यानी वर्तमान उत्तरी–संगीत के अनुसार अहोबल के शुद्ध–सप्तक में गांधार व निषाद कोमल तथा शेष सभी स्वर शुद्ध लगते थे। इसकी पुष्टि के लिए दो तर्क दिए जा सकते हैं। प्रथम तो यह कि वह प्राचीन ग्रन्थकारों के अनुसार अपने शुद्ध स्वरों को षड्ज–ग्राम के स्वर कहता है जो चौथी, सातवीं, नौवीं, तेरहवीं, सत्रहवीं, बीसवी, और बाईसवीं श्रुतियों पर षड्ज, ऋषभ आदि सातों स्वरों को स्थापित करने का विधान है। शड्ज–ग्राम के स्वर आधुनिक काफ़ी के लगभग समान कहे जा सकते हैं अन्तर केवल यह है कि षड्ज–ग्राम की अपेक्षा काफ़ी में ऋषभ और धैवत तीन के स्थान पर चार श्रुतियों के होते है।, गांधार और निशाद भी अपने स्थान से एक–एक श्रुति ऊँचे होते है।।। दूसरे तर्क के अनुसार वीणा पर स्वरों की स्थापना से तो निश्चित रुप से वर्तमान काफ़ी के ही स्वर अहोबल के शुद्ध स्वर सिद्ध होते हैं अतः कहा जा सकता है कि संगीत–पारिजात का शुद्ध–सप्तक वर्तमान काफ़ी के समान था।

विकृत–स्वर – संगीत–पारिजात ने विकृत स्वरों की संख्या 22 मानी है जो सम्भवतः किसी भी ग्रन्थकार के विकृत स्वरों की संख्या से कहीं अधिक है। संगीत–रत्नाकर में पं0 शारंगदेव ने विकृत स्वर 12 माने हैं यह संख्या भी पर्याप्त थी पर अहोबल ने तो विकृत स्वर 22 मान कर अपने विकृत स्वर सर्वाधिक सिद्ध कर दिए ।

शुद्ध अवस्था से स्वरों को ऊँचा करके – षड्ज–पंचम के अतिरिक्त कोई भी शुद्ध–स्वर जिसे एक श्रुति ऊँचा होने पर तीव्र, दो श्रुति ऊँचा होने पर तीव्रतर, तीन श्रुति ऊँचा होने पर तीव्रतम और चार श्रुति ऊँचा होने पर अतितीव्रतम कहा जाएगा। ध्यान केवल यह रखना होगा कि जो स्वर चढ़ रहा है वह आगामी स्वर से आगे न निकल जाए ।

शुद्ध अवस्था से स्वरों को नीचा करके – वर्तमान में ऋषभ, गांधार, धैवत, निषाद स्वर, शुद्ध अवस्था से नीचे होने पर कोमल होते हैं। अहोबल के यही चार स्वर शुद्ध अवस्था से एक श्रुति नीचे होने पर कोमल और यही चारों स्वर अपनी शुद्ध अवस्था से दो श्रुति नीचे होने पर पूर्व–विकृत कहलाते थे। जैसे सातवीं पर अहोबल का शुद्ध–ऋषभ, छठी पर कोमल–ऋषभ और पाँचवीं पर पूर्व–ऋषभ है नौवीं श्रुति पर शुद्ध–गांधार पर, आठवीं पर कोमल–गांधार और सातवीं पर पूर्व–गांधार है, इसी प्रकार धैवत और निषाद भी एक–एक श्रुति घटने पर कोमल और दो–दो श्रुति घटने पर पूर्व–विकृत कहलाते थे। अतः चार कोमल और चार ही पूर्व कुल आठ विकृत–स्वर अपने शुद्ध अवस्था से नीचे होने पर बनते थे। इस प्रकार अहोबल ने 14 तीव्र और 8 कोमल मिलाकर 22 विकृत–स्वर कहे हैं और उन्होंने इनमें सात शुद्ध स्वरों को मिला कर कुल 29 स्वरों का उल्लेख संगीत–पारिजात में किया।

मूर्च्छना व मेल – मूर्च्छना तो तीनों ग्रामों की सात–सात कही हैं पर सम्पूर्ण के साथ–साथ मूर्च्छना के शाडव व औडुव भेद भी कहे हैं। शड्ज–ग्राम की मूर्च्छनाओं की संख्या 18948 कही गई है।।।

मूर्च्छना व मेल में अन्तर यह है कि मेल, राग में लगने वाले स्वरों को बताता है तो मूर्च्छना, राग के चलन का भी बोध करती है। मूर्च्छना में आरोह व अवरोह का होना आवश्यक है। किसी एक मेल में समान स्वरों वाली दो मूर्च्छनाओं के आरम्भिक–स्वर के अलग होने के कारण वे भिन्न–भिन्न मानी जाती हैं।

वीणा पर लम्बाई के आधार पर स्वरों की स्थापना – पं0 अहोबल ने वीणा के तार की लम्बाई पर स्वरों की स्थापना करके स्वरों को श्रव्य के साथ–साथ दृश्य भी बना दिया जिससे स्वरों की स्थिति में कोई संशय नहीं रहा।

स्वरों की स्थापना के लिए अहोबल ने तार के दो या तीन भाग करके शुद्ध व विकृत सभी स्वरों को स्थापित किया है। उन्होंने पूरे खुले तार के बीच में तार–षड्ज, मध्य–षड्ज और तार–षड्ज के बीच में मध्यम, पूरे तार के तीन भाग करके मेरु की ओर से प्रथम भाग पर पंचम, मध्य–षड्ज और पंचम के तीन भाग करके मेरु की ओर से पहले भाग पर ऋषभ, मध्य–षड्ज और पंचम के बीच गांधार (वर्तमान कोमल–गांधार), पंचम और तार–शड्ज के बीच धैवत, पंचम और तार–षड्ज के तीन भाग करके पंचम की ओर से दूसरे भाग पर निषाद (वर्तमान कोमल–निषाद) की स्थापना की।

विकृत स्वरों के लिए उन्होंने षड्ज और धैवत के बीच तीव्र–गांधार, षड्ज और ऋषभ के तीन भाग करके मेरु की ओर से दूसरे भाग पर कोमल–ऋषभ, गांधार एवं तार–षड्ज के तीन भाग करके गांधार की ओर से पहले भाग पर तीव्र–मध्यम, पंचम और तार–षड्ज के तीन भाग के पंचम की ओर से पहले भाग पर कोमल–धैवत, धैवत और तार–षड्ज के तीन भाग करके धैवत की ओर से दूसरे भाग पर तीव्र–निषाद (वर्तमान शुद्ध–निषाद) की स्थापना की।

रागों का विवेचन – संगीत–पारिजात में 122 रागों का वर्णन दिया गया है। प्रत्येक राग के स्वर, आरोह–अवरोह, ग्रह, न्यास, मूर्च्छना के स्वर दिए गए हैं।। मूर्च्छना का अर्थ, राग के स्वरकरण की प्रथम तान है, उदाहरणार्थ– यहाँ राग धनाश्री का विवरण दिया जा रहा है :–

"आरोहे रि–ध–हीना स्यात् पूर्णाशुद्धस्वरैर्युता।

गांधारस्वरपूर्वा स्याद्धनाश्रीर्मध्यमान्तका इति धनाश्रीः।"

ग म प नि सां, रें सां नि ध प म, ग म प म ग रे सा,

ग म प नि प नि सां, रें सां नि सां नि ध प म इति स्वर करणम्।

इस विवरण को देखने से ज्ञात होता है कि वर्तमान धनाश्री से पर्याप्त मात्रा में अहोबल का धनाश्री मिलता है। क्योंकि अहोबल के शुद्ध गांधार–निशाद हमारे कोमल गांधार–निशाद ही हैं।।

रागों का रसों से सम्बन्ध – रागों का रसों से सम्बन्ध तो सभी प्राचीन ग्रन्थकारों ने जोड़ा ही है पर अहोबल ने एक नवीन विधि से रागों को रसों से सम्बन्धित किया है।

श्रुतियों की दीप्ता, करुणा, मध्या, मृदु व आयता ये पाँच जातियाँ कही गई हैं। जो श्रुति जिस राग में अंश बनती है उस श्रुति की जो जाति है वही राग का रस होता है।

22 श्रुतियों में तीव्रा, कुमुद्धती, मन्दा, छन्दोवती आदि श्रुतियों के नाम कहे गए हैं।। इन श्रुतियों की पाँच जातियाँ दीप्ता, आयता, मध्या, करुणा व मृदु जातियाँ सभी प्राचीन ग्रन्थकार कहते चले आए हैं।। पं0 अहोबल ने इन जातियों का सम्बन्ध रागों के रसों से जोड़ा है। दीप्ता जाति की श्रुतियाँ तीव्रा, रौद्री, वज्रिका और उग्रा हैं आयता जाति की कुमुद्धती, क्रोधा, प्रसारिणी, सन्दीपनी व रोहिणी हैं। करुणा जाति की दयावती, आलापिनी व मदन्ती हैं। मृदु जाति की मन्दा, रक्तिका, प्रीति व क्षिति हैं। मध्या जाति की छन्दोवती, रंजनी, मार्जनी, रक्तिका, रम्या व क्षोभिणी हैं।

अभ्यास प्रश्न

क) एक शब्द में उत्तर दो :–

1. बृहद्देशी का काल कौन सा माना जाता है?
2. बृहद्देशी में कितने अध्याय है?
3. पं0 अहोबल के शुद्ध एवं विकृत मिलाकर कुल कितने स्वर बताए हैं ?

ख) सत्य/असत्य बताईए :–

1. 'राग' को सर्वप्रथम परिभाषित करने का श्रेय मतंग को है।
2. संगीत पारिजात में कुल 122 रागों का वर्णन मिलता है।
3. संगीत परिजात का शुद्ध सप्तक आधुनिक भैरव के समान था।

4.5 सारांश

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप जान चुके हैं कि संगीत सदा संस्कृति का संगी रहा है। संगीत के इतिहास को संस्कृति के इतिहास से अलग नहीं किया जा सकता है। भारतीय संगीत की यह कृतियाँ बृहद्देशी व संगीत पारिजात संगीत की दृष्टि से महत्वपूर्ण रही हैं। मतंग कृत 'बृहद्देशी' में विभिन्न प्रदेशों में प्रचलित संगीत शैलियों पर प्रकाश डाला गया है तथा वर्तमान संगीत में महत्वपूर्ण 'राग' नामक वस्तु का विवेचन भी सर्वप्रथम इसी ग्रंथ में पाया गया है। धरती पर सदियों वर्ष पूर्व से लेकर भरत काल तक एवं छठी–सांतवी शताब्दियों में रचित मतंगकृत बृहद्देशी आदि तथा मध्यकाल तक सभ्यता के सभी युगों में संगीत की उन्नत अवस्था का परिचय प्राप्त होता है जिसमें गायन, वादन, नृत्य और नाट्य को आवश्यकतानुसार महत्व एवं प्रश्रय प्राप्त था। अतः विभिन्न कालों में लिखित ग्रन्थों में जो संगीत के सिद्धान्त और नियम बताए गए हैं वे अब भी मान्य हैं। परन्तु इस पद्धति का विस्तृत पालन वर्तमान में नहीं होता है। संगीत शास्त्र सम्बन्धी विशिष्ट जानकारी जो हमें प्राचीन एवं मध्यकालीन ग्रन्थों में प्राप्त होती है उन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर आज भी पूरी सांगीतिक व्यवस्था टिकी हुई है।

4.6 शब्दावली

1. **श्रुति** – कानों से सुनी जा सकने वाली सुक्ष्म ध्वनि।

2. **ग्राम मूर्च्छना** – निश्चित सप्तक के सात स्वर समूहों के भाग को ग्राम कहते है। सप्तक में क्रमानुसार पॉच, छः या सात स्वरों का विशेष क्रमयुक्त प्रयोग मूर्च्छना कहलाता है।

4.7 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क) एक शब्द में उत्तर दो :–

1. 5 से 7 शताब्दी के बीच
2. 8 अध्याय
3. 29

ख) सत्य/असत्य बताईए :–

1. सत्य
2. सत्य
3. असत्य

4.8 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सुभाष रानी चौधरी(2002), संगीत के प्रमुख शास्त्रीय सिद्धान्त, कनिष्का पब्लिसर्स, नई दिल्ली।
2. डॉ0 शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे(1992), संगीत बोध, मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल।
3. डॉ0 लक्ष्मी नारायण गर्ग(2001), राग विशारद भाग–1, संगीत कार्यालय, हाथरस।
4. विष्णु नारायण भातखण्डे(1966), उत्तर भारतीय संगीत का संक्षिप्त इतिहास, संगीत कार्यालय, हाथरस।

4.9 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. लक्ष्मी नारायण गर्ग, बसन्त(1997), संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. शान्ति गोबर्धन(1989), संगीत शास्त्र दर्पण भाग–2, पाठक पब्लिकेशन, इलाहाबाद।
3. पं0 जगदीश नारायण पाठक(1995), संगीत शास्त्र प्रवीण, पाठक पब्लिकेशन, इलाहाबाद।

4.10 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मतंग कृत बृहद्देशी की विस्तृत विवेचना प्रस्तुत कीजिए।

इकाई 5– पाठ्यक्रम के रागों केदार एवं विहाग का परिचय, स्वर विस्तार एवं स्वर समूह के माध्यम से राग पहचानना; पाठ्यक्रम के रागों केदार एवं विहाग में छोटा ख्याल/रजाखानी गत को तानों/तोड़ों सहित लिपिबद्ध करना ।

5.1 प्रस्तावना
5.2 उद्देश्य
5.3 राग केदार का परिचय
5.4 राग विहाग का परिचय
5.5 राग केदार में छोटा ख्याल तानों सहित लिपिबद्ध करना
5.6 राग विहाग में छोटा ख्याल तानों सहित लिपिबद्ध करना
5.7 राग केदार में रजाखानी गत तोड़ों सहित लिपिबद्ध करना
5.8 राग विहाग में रजाखानी गत तोड़ों सहित लिपिबद्ध करना
5.9 सारांश
5.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
5.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
5.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
5.13 निबन्धात्मक प्रश्न

5.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम बी0ए0एम0वी0(एन0)–223 की पंचम इकाई है। इस इकाई में पाठ्यक्रम के रागो में छोटा ख्याल एवं रजाखानी गत को तानों/ तोड़ों सहित लिपिबद्ध कर बताया गया है।

इस इकाई के अध्ययन से आप पाठ्यक्रम के रागों को भली–भाँति समझ सकेंगे तथा उनमें ख्याल एवं रजाखानी गत रचनाएं प्रस्तुत कर सकेंगे।

5.2 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन से आप :–

- जान सकेंगे कि रागों की ख्याल एवं रजाखानी गत रचनाओं को कैसे लिपिबद्ध किया जाता है।
- जान सकेंगे कि किसी राग में तानों/ तोड़ों को किस प्रकार लिपिबद्ध किया जाता है।
- स्वयं राग में तानों/ तोड़ों को बना सकेंगे व लिपिबद्ध भी कर सकेंगे।

5.3 राग केदार का परिचय

दो मध्यम अरू शुद्ध स्वर, मानत थाट कल्याण।
सा मा वादी सम्वादी से, राग केदार बखान।।

विवरण– इस राग को कल्याण थाट जन्य माना गया है। हमीर राग की तरह इसमें भी दोनों मध्यमों का प्रयोग होता है। वादी मध्यम और सम्वादी षडज है। इस राग के आरोह में रे ग और अवरोह में केवल ग स्वर वर्ज्य है, इसलिये इसकी जाति औडव–षाडव है। इस राग के अवरोह में कभी–कभी दोनों मध्यम एक के बाद एक लिये जाते हैं। इस राग के आरोह को लेते समय षडज से सीधे मध्यम पर जाते हैं। कभी–कभी अवरोह मे धैवत के साथ कोमल निषाद का अल्प प्रयोग भी किया जाता है, जो विवादी के रूप में प्रयुक्त होता है। अवरोह में गन्धार स्वर वक्र और दुर्बल है। कुछ विद्वान कहते हैं कि केदार में गन्धार गुप्त है। केदार के अनेक प्रकार प्रचलित हैं जैसे – शुद्ध केदार, चॉदनी केदार, जलधर केदार, मलुहा केदार इत्यादि।

आरोह – सा म , म प, ध प, नि ध सां।
अवरोह – सां नि ध प, मं प ध प म – रे सा।।
पकड़ – सा म , म प, मं प ध प म – रे सा
न्यास के स्वर – सा म और प
समप्रकृति राग– हमीर और कामोद

आलाप

नि़ रे नि़ सा –< सा –< , ध़ –– प़ –<प़ –<
प़ सा –< सा –< सा म –<म –< सा रे सा –< सा –<
दा ––
सा म ग प़ –<प़ –<मं प मंप मं प ध – प – म
–< म –<, म ग प मं ध प म –<म –<म –<,
सा रे – सा –< सा –< , नि़ सा रे सा म –<म –<,
दा ––
ग म म ग प़ –<प़ –<, मं प मं प ध – ध –
प़ –< प़ –<, मं प ध प सां –<सां –<सां –<,
दा –––
नि ध नि सां रें – सां –<सां –<, सां मं रें सा,
पं मं रें सां, नि सां रें सां, ध – प –, मं प ध प

<म –<म –<, सा रे सा – सा –< सा –<
दा ––

5.4 राग विहाग का परिचय

"कोमल मध्यम तीरव सब, चढ़ते रि ध को त्याग
ग नि वादी सम्मवादीते जानत राग बिहाग।। रागचन्द्रिकासार

थाट	–	बिलावल
वादी	–	गन्धार
सम्वादी	–	निषाद
जाति	–	औडव–सम्पूर्ण
समय	–	रात्रि का दूसरा प्रहर

राग विहाग बिलावल थाट से उत्पन्न माना जाता है। इसके आरोह में रिषभ व धैवत वर्जित है, तथा अवरोह सम्पूर्ण है। अतः इस राग की जाति औडव–सम्पूर्ण मानी जाती है। इस राग का गायन समय रात्रि का दूसरा प्रहर है। विवादी स्वर के नाते इस राग में तीव्र मध्यम का अल्प प्रयोग होता है। रात्रि का राग होने के कारण यह प्रयोग सुन्दर प्रतीत होता है। अवरोह में रे, ध स्वर का अल्प प्रयोग है। ये स्वर यदि प्रबल हो जाएं तो बिलावल राग की छाया दिखाई देने लगेगी।

आरोह	–	सा ग, म प, नि सां।
अवरोह	–	सां, नि ध प, म ग, रे सा।
पकड़	–	नि़ सा, ग म प, ग म ग, रे सा।
न्यास का स्वर	–	सा, ग, प, नि,
समप्रकृति राग	–	यमन कल्याण,

<u>विशेषताएं</u> :–

1. इसकी चलन अधिकतर मन्द्र नि से प्रारम्भ की जाती है। जैसे – नि़ सा ग, रे सा
2. रे ध स्वर आरोह में तो वर्जित है ही, किन्तु अवरोह में भी इनका अल्प प्रयोग है। अधिकतर इन्हें कण के रूप में प्रयोग करते हैं। जैसे सां नि, ^{ध}प, ध, प, ग, म, ग, $^{रे}$सा।
3. राग की सुन्दरता बढ़ाने के लिए कभी–कभी अवरोह में तीव्र मध्यम का प्रयोग पंचम के साथ विवादी स्वर की तरह किया जाता है। जैसे – प म' ग म ग, रे सा। आजकल तीव्र मध्यम का प्रयोग इतना अधिक बढ़ गया है कि इसे राग का आवश्यक स्वर माना जाने लगा है। कुछ पुराने गायक बिहाग में तीव्र म' का प्रयोग बिल्कुल नहीं करते हैं।

4. तीव्र म' का आजकल प्रचार अधिक होने के कारण कुछ संगीतज्ञ इसे कल्याण थाट का राग मानते हैं। प्राचीन ग्रन्थों में इसे बिलावल थाट का राग माना गया है।
5. यह गम्भीर प्रकृति का राग है। इसमें बिलम्बित ख्याल, द्रुत ख्याल तथा तराना गाया जाता है।

स्वर विस्तार :–

1. ^नि^सा – सा (सा) नि़ नि़ – – सा ग सा (सा) नि, नि़ ––– प़ , प़ नि़ नि़ –– सा ^रे^ग – सा।
2. नि़ सा, ग , म ग प ––– ग म ग , नि़ – सा –, रे नि़ सा, ग –– रे सा, प़ नि़ सा ग ––– म ग रे सा।
3. ग म प, प (प) – – मं – ग म, म म ग, (प) ग म ^रे^ग सा, प़ नि़ सा ग म प –– प मं ग म ग, ग म प ध ग म ग सा।
4. ग म प नि नि सां, (सां) नि, ^प^नि प, मं ग म प नि – नि^प सां, (सां) नि –– प ग

   म प, ग म ग सा,
5. प मं ग म न सां, प नि सां रें सां, नि सां रें रें सां नि, प नि सां, –– गं गं –

   सां, रें नि सां गं सां, प नि सां रें सां, नि (सां) नि –– ध प, मं ग म ग, ग म प
   ध ग म ग सा।

5.5 राग केदार में छोटा ख्याल तानों सहित लिपिबद्ध करना

छोटा ख्याल (तीनताल)

स्थायी

^नि^सा	रे	सा	^सा^प	प	प	मं	प	ध	–	प	प	मंपध	मंप	म	–
सो	ऽ	च	स	म	झ	म	न	मी	ऽ	त	प	युऽऽ	रऽ	व	ऽ
0				3				×				2			
^ग^म	–	प	प	^प^सां	–	^नि^ध	प	म	–	^म^ध	प	^ग^म	रे	सा	–
स	ऽद्	गु	रू	ना	ऽ	म	क	रे	ऽ	सु	मि	र	न	वा	ऽ
0				3				×				2			

अन्तरा

मं								सां	नि						
प	प	सां	सां	सां	सां	रे	सां	ध	ध	सां	रें	सां	नि	ध	प
घ	रि	घ	रि	प	ल	प	ल	उ	म	र	घ	ट	त	स	ब
0				3				×				2			
ग		प		सां		नि		ग		म		ग			
म	म	प	सां	रे	सां	ध	प	म	–	ध	प	म	रे	सा	–
अ	ज	हूँ	चेऽ	ऽ	त	म	ति	मं	ऽ	द	च	तु	र	वा	ऽ
0				3				×				2			

क्रमिक पुस्तक मालिका भाग–3, लेखक : श्री विश्णुनारायण भातखण्डे (पेज सं० 124–125)

तानें– स्थाई

सम से तान प्रारम्भ

1.	मंप	धप	मम	रेसा	साम	गप	मंध	प–
	×				2			
2.	मंप	धनि	सारें	सांनि	धप	मंप	धप	म–
	×				2			
3.	सारे	सासा	मम	रेसा	मंप	धप	मम	रेसा
	×				2			
4.	मंप	धप	मंप	धप	मंप	धप	मम	रेसा
	×				2			

9 वीं मात्रा से प्रारम्भ

5.	मंप	धप	मंप	निनि	धप	मंप	धनि	सांनि
	0				3			
	धप	मंप	धनि	सारें	सांनि	धप	मम	रेसा
	×				2			
6.	साम	गप	मंध	पसां	निरें	सांनि	धप	मंप
	0				3			

	निनि	धप	मप	धनि	धप	मंप	धप	म–
	×				2			
7.	सारे	सासा	मप	मम	पध	पप	सांरें	सांसां
	0				3			
	मंमं	रेंसां	निध	पप	मंप	धप	मम	रेसा
	×				2			

तानें–अन्तरा

सम से तान प्रारम्भ

1.	सांनि	धप	मम	रेसा	मग	पमं	धप	सां–
	×				2			
2.	सांसां	मंमं	रेंसां	सांरें	सांनि	धप	मंप	सां–
	×				2			
3.	सांरें	सांनि	धप	मंप	धप	म–	पम	रेसा
	×				2			
4.	सांनि	धप	मंप	धनि	धप	मंप	धप	सां–
	×				2			

9 वीं मात्रा से प्रारम्भ

5.	संमं	गंपं	मंमं	रेंसां	सांरें	सांनि	धप	मंप
	0				3			
	निनि	धप	मम	रेसा	मग	पमं	धप	सां–
	×				2			

सम से तान प्रारम्भ

6.	मंप	धप	म–	मंप	धनि	धप	मंप	धप
	×				2			
	म–	मंप	धनि	सांनि	धप	मंप	धप	म–
	0				3			
	मंप	धनि	सांरें	सांनि	धप	मंप	धप	म–
	×				2			

5.6 राग विहाग में छोटा ख्याल तानों सहित लिपिबद्ध करना

छोटा ख्याल – त्रिताल

स्थाई – सखियाँ चालो प्रभु के दरसन धन धन भाग सुफल होत नयन।

अन्तरा – सोला सिंगार सजो अत सुलछन,
कुसुम सुगन्धित हर रंग सुब सन
गिरिधर प्रभु के चरनन अरपन
आज करो अपनो तन मन धन।

स्थाई

सा		म			रे									म	
प	प	ग	म	ग	सा	–	नि़		प़	प़	नि़	–	सा	सा	ग	ग
स	ब	स	खि	यां	चा	ऽ	लो		प्र	भु	के	ऽ	द	र	स	न
0				3					×				2			
म																
ग	म	प	नि	सां	नि	मं	प		प	प	ग	–	म	गरे	नि़	सा
ध	न	ध	न	भा	ऽ	ग	सु		फ	ल	हो	ऽ	त	नऽ	य	न
0				3					×				2			

अन्तरा

मं			सां										नि			
प	–	प	नि	नि	–	नि	सां		सां	–	सां	सां	सां	रें	सां	सां
सो	ऽ	ला	सिं	गा	ऽ	र	स		जो	ऽ	अ	त	सु	ल	छ	न
0				3					×				2			
नि																
सां	सां	सां	सां	नि	–	प	प		प	प	नि	नि	सां	निध	मं	प
कु	सु	म	सु	ग	ऽ	धि	त		ह	र	रं	ग	सु	बऽ	स	न
0				3					×				2			
प									नि	रें						
ग	म	ग	म	प	प	नि	–		सां	गं	नि	सां	नि	नि	मं	प
गि	रि	ध	र	प्र	भु	के	ऽ		च	र	न	न	अ	र	प	न
0				3					×				2			
मं						ध					ग		ग			
प	नि	सां	रें	सां	नि	प	प		प	–	म	ग	म	गरे	नि़	सा
आ	ऽ	ज	क	रो	ऽ	अ	प		नो	ऽ	त	न	म	नऽ	ध	न
0				3					×				2			

आलाप – स्थाई (8 मात्रा – सम से प्रारम्भ)

1. स ब स खि | यां चा ऽ लो | नि़ सा ग म | ग रे सा –
   0 3 × 2
2. स ब स खि | यां चा ऽ लो | ग म प – | ग म ग सा
   0 3 × 2

आलाप – स्थाई (16 मात्रा – खाली से प्रारम्भ)

3. स ब स खि | यां चा ऽ लो | प्र भु के ऽ | द र स न
   नि़ सा ग म | ग – प – | ग म प म | ग रे सा –
   0 3 × 2
4. ग म प नि | – प मं प | निप मंप ग म | प गम गरे सा–
   0 3 × 2
5. प नि सां – | गं रें सां – | नि प मं प | गम पनी सां –
   0 3 × 2

आलाप – अन्तरा (8 मात्रा)

1. सो ऽ ला सिं | गा ऽ र सा | सां – नि सां | गं – – सां
   0 3 × 2
   सो ऽ ला सिं | गा ऽ र सा | नि सां गं मं | गं रें सां –
   0 3 × 2

तानें – स्थाई (8 मात्रा – सम से प्रारम्भ)

1. निसा गम पनी धप | मंप गम गरे सा–
   × 2
2. गम पनी सांनि सांनि | धप मंप गम ग–
   × 2
3. पनि सांनि धप मंप | गम पम गरे सा–
   × 2
4. सांरें सांनि धप मंप | गम पम गरे सा–
   × 2

तानें – स्थाई (16 मात्रा – खाली से प्रारम्भ)

5. गम गम पनी पनी | सांनि सांनि धप मंप
   0 3
   गम पनी सांनि धप | मंप गम गरे सा–
   × 2

तानें – अन्तरा (8 मात्रा – सम से प्रारम्भ)

1. सांनि धप मंप गम | पमं गम पनि सां–
   × 2

	पनि	सारें	सांनि	धप	मंप	गमं	पनि	सां–
	×				2			

तानें – अन्तरा (16 मात्रा – खाली से प्रारम्भ)

3.	सांनि	धप	सारें	सांनि	धप	मंप	गमं	पनि
	0				3			
	सांनि	धप	मंप	गम	पम	गम	पनी	सां–
	×				2			

5.7 राग केदार में रजाखानी गत व तोडों को लिपिबद्ध करना

रज़ाखानी ग़त – तीनताल

स्थाई

					सा	ध	–	प	मं	पप	ध	प
					दा	दा	–	र	दा	दिर	दा	रा
					0				3			
म	<	<	रे	–	रे	सा	सा					
दा	–	–	दा	–	र	दा	रा					
X				2								
					नि	धध	सा	नि	रे	सा	म	–
					दा	दिर	दा	रा	दा	रा	दा	–
					0				3			
प	मंमं	ध	प	म	म	रे	सा					
दा	दिर	दा	रा	दा	दा	दा	रा					
X				2								

अन्तरा

					प	पप	प	सां	–	सां	नि	सां
					दा	दिर	दा	दा	–	र	दा	रा
					0				3			
नि	सांसां	रें	सां	ध	ध	प	–					
दा	दिर	दा	रा	दा	दा	रा	–					
X				2								
					नि	सांसां	मं	रें	सां	ध	–	प

					दा	दिर	दा	रा	दा	रा	—	दा
					0				3			
मं	पप	ध	प	म	म	रे	सा					
दा	दिर	दा	रा	दा	रा	दा	रा					
X				2								

तोडे

1—	मंप	धनि	सांनि	धप	|	मंप	धप	मम	रेसा	|	
	X					2					मु0
2—	मग	पमं	धप	निध	|	पम	धप	मरे	सा—	|	
	X					2					मु0
3—	मम	रेसा	ऩिसा	रेसा	|	पमं	धप	मम	रेसा	|	
	X					2					मु0
4—	मंप	सां—	सांनि	धप	|	मंप	धप	म—	रेसा	|	
	X					2					मु0
5—	~~साम~~	~~रेम~~	~~रेम~~	~~रेसा~~	|	~~पमं~~	~~धप~~	~~पम~~	~~रेसा~~		
	X					2					मु0
6—	ध़ऩि	सारे	ऩिसा	मंप	|	धप	मंप	मम	रेसा	|	
	X					2					मु0
7—	मग	पमं	धप	निध	|	सांनि	रेंसां	मंमं	रेंसा	|	
	X					2					
	निरें	सांनि	धप	मंप	|	मंध	पप	मम	रेसा	|	
	0	3									
	सारे	ऩिसा	म—	धप	|	म—	ऽ—,	सारे	ऩिसा	|	
	X					2					
	म—	धप	म—	ऽ—,	|	सारे	ऩिसा	म—	धप	|	
	0					3				X	

5.8 राग बिहाग में रजाखानी गत व तोडों को लिपिबद्ध करना

रजाखानी गत

स्थाई

सा	मम	ग	प	–	नि	–	–सां	नि	–	प	पप	ग	मम	ग	–
दा	दिर	दा	रा	ऽ	दा	ऽ	दा	दा	ऽ	दा	दिर	दा	दिर	दा	ऽ
0				3				×				2			
ग	मम	प	नि	सां	निनि	ध	प	ग	मम	पप	मम	ग–	गरे	–रे	सा–
दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दाऽ
0				3				×				2			

अन्तरा

प	गग	म	प	–	निनि	सां	नि	सां	–	प	निनि	सां	गंगं	सां	–
दा	दिर	दा	रा	ऽ	दिर	दा	रा	दा	ऽ	दा	दिर	दा	दिर	दा	ऽ
0				3				×				2			
गं	मंमं	गं	सां	–	निनि	ध	प	ग	मम	पप	मम	ग–	गरे	–रे	सा–
दा	दिर	दा	रा	ऽ	दिर	दा	रा	दा	दिर	दिर	दिर	दाऽ	रदा	ऽर	दाऽ
0				3				×				2			

आठ मात्रा के तोडों को लिपिबद्ध करना :–

तोड़ा नं. 1(सम से)

गम	पनि	सांनि	धप	गम	पम	गरे	सा–
×				2			

तोड़ा नं. 2(सम से)

गम	पनि	सारें	सांनि	धप	मंप	गम	गसा
×				2			

तोडा नं. 3 (सम से)

पम	गम	पनि	सांनि	धप	मंप	गम	गसा
×				2			

सोलह मात्रा के तोड़ों को लिपिबद्ध करना :–

तोड़ा नं. 1(सम से)

गम	पम	गम	पनि	सांनि	धप	गम	पनि	
×				2				
सारें	सांनि	धप	मंप	गम	पम	गरे	सा–	
0				3				
गम	पम	गम	पसां	नि–	<<	गम	पम	
×				2				
गम	पसां	नि–	<<	गम	पम	गम	पसा	नि
0				3				×

तोड़ा नं. 2(सम से)

पम	गम	गम	पनि	मप	निसां	पनि	सांरे	
×			2					
गंमं	गंरें	सांरें	सांनि	धप	मंप	गम	गसा	
0			3					
पम	गम	प–	निसां	नि–	<<	पम	गम	
×			2					
प–	निसां	नि–	<<	पम	गम	प–	निसां	नि
0			3					×

3 **X**

अभ्यास प्रश्न

अ) रिक्त स्थानो की पूर्ति कीजिए :

1. राग केदार का वादी स्वर ––––– है।
2. राग विहाग का गायन/वादन समय ––––– है।
3. केदार राग, ––––––– थाट का राग है।
4. राग विहाग का वादी स्वर ––––– है।

ब) लघु उत्तरीय प्रश्न :

1. राग केदार का परिचय दीजिए।
2. राग विहाग का परिचय दीजिए।

5.9 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के बाद आप छोटा ख्याल एवं रजाखानी गत की स्वरलिपि को पढ़ सकेंगे एवं उनका क्रियात्मक रूप से वादन करने में सक्षम होंगे। पाठ्यक्रम के रागों में छोटा ख्याल एवं रजाखानी गत दी गई हैं। इन रागों का तानों एवं तोडों के द्वारा विस्तार भी किया गया है जिससे आप राग में अन्य तानों एवं तोडों को स्वयं बनाने में भी सक्षम होंगे।

5.10 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. मध्यम 2. रात्रि का दूसरा प्रहर 3. कल्याण_ 4. गन्धार

5.11 संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. भातखण्डे, पं0 विष्णुनारायण, *हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति–क्रमिक पुस्तक मालिका भाग–2,* संगीत कार्यालय, हाथरस।

2. देवांगन, श्री तुलसी राम, *बेला वादन शिक्षा,* संगीत प्रेस, 88 साउथ मलाका, इलाहाबाद।
3. श्रीवास्तव, प्रो0 हरीश चन्द्र, *राग परिचय भाग – 1,* संगीत सदन प्रकाशन, साउथ मालाका, इलाहाबाद।
4. चौबे, डा0 सुशील कुमार, *हमारा आधुनिक संगीत,* उ0प्र0 हिन्दी संस्थान, लखनऊ।

5.12 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. वसन्त, *संगीत विशारद,* संगीत कार्यालय, हाथरस (उ0 प्र0)।
2. *संगीत* मासिक पत्रिका, संगीत कार्यालय, हाथरस (उ0 प्र0)।

5.13 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पाठ्यक्रम के रागों में रजाखानी गत को तोडों सहित लिपिबद्ध कीजिए।
2. पाठ्यक्रम के रागों में छोटा ख्याल को तानों सहित लिपिबद्ध कीजिए।

इकाई 6 – पाठ्यक्रम की तालों झपताल एवं दादरा ताल का परिचय एवं बोल समूह द्वारा ताल पहचानना; पाठ्यक्रम की तालों झपताल एवं दादरा ताल के ठेकों को दुगुन व चौगुन लयकारी सहित लिपिबद्ध करना

6.1 प्रस्तावना

6.2 उद्देश्य

6.3 तालों का परिचय

6.3.1 झपताल का परिचय

6.3.2 दादरा ताल का परिचय

6.4 तालों को लयकारीयों में लिखना

6.4.1 झपताल में लयकारी

6.4.2 दादरा ताल में लयकारी

6.5 सारांश

6.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

6.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

6.8 निबन्धात्मक प्रश्न

6.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई बी0ए0 संगीत के पाठ्यक्रम बी0ए0एम0एम0(एन0)–223 की छठी इकाई है। इससे पहले की इकाईयों के अध्ययन के बाद आप गायक व वादक के गुण व दोषों के विषय में जान चुके होंगे। आप भारतीय संगीत की थाट पद्धति के विषय में भी जान चुके होंगे। आप भारतीय संगीत के ग्रन्थों का ज्ञान भी प्राप्त कर चुके होंगे।

इस इकाई में पाठ्यक्रम की तालों का परिचय व उनके ठेकों को विभिन्न लयकारी (दुगन व चौगुन) में लिपिबद्ध करने के विषय में बताया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप पाठ्यक्रम की तालों के ठेकों एवं उनको विभिन्न लयकारी में लिपिबद्ध करने के विषय में जान सकेंगे। इससे आप लयकारी को बोलने एवं बजाने में भी सक्षम होंगे।

6.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :–

1. लयकारी के विषय में जान पाऐंगे।
2. तबले की ताल के ठेकों को विभिन्न लयकारी में लिपिबद्ध करने एवं उसके क्रियात्मक स्वरूप को तबले में प्रस्तुत कर पायेंगे।
3. लयकारी का प्रयोग अपने वादन(एकल वादन, संगत) करने में सक्षम होगे जिससे आप का वादन प्रभावशाली होगा।

6.3 तालों का परिचय

6.3.1 झपताल का परिचय :–

परिचय – यह चार विभाग में विभक्त 10 मात्रा की विषम पदीय ताल है जिसका प्रथम एंव तृतीय विभाग दो–दो मात्रा एवं दूसरा एवं चौथा विभाग तीन–तीन मात्रा का है। पहली, तीसरी एवं आठवीं मात्रा पर ताली एवं छठी मात्रा पर खाली है। प्रथम विभाग में चतुस्त्र का खण्ड दो मात्रा एवं द्वितीय विभाग तिस्त्र जाति का है जो मिलकर खण्ड जाति है। विभागों में समान मात्राऐं ना होने के कारण यह विषम ताल है। इसका प्रयोग मध्य लय की रचनाओं के साथ किया जाता हैं। एकल वादन में भी झपताल का खूब प्रयोग किया जाता है।

मात्रा – 10, विभाग – 4, ताली – 1, 3 व 8 पर, खाली – 6 पर

ठेका

धि	ना	धि	धि	ना	ति	ना	धि	धि	ना	धि
×		2			0		3			×

बोल समूह द्वारा ताल पहचानना – तालों में कुछ विशेष बोल समूह होते हैं जिससे उस ताल को पहचाना जाता है। जैसे झपताल में धि ना धि धि ना ।

6.3.2 दादरा ताल का परिचय :–

परिचय – दादरा ताल चंचल व श्रृंगारिक प्रकृति का ताल है। दादरा एक विशेष गायन शैली का नाम भी है। इसका प्रयोग तबले, ढ़ोलक, नाल, ताशा, नक्कारा तथा खोल आदि वाद्यों पर किया जाता है। इसका प्रयोग उपशास्त्रीय संगीत, भाव संगीत, लोक संगीत, भजनों तथा फिल्मी संगीत के अन्तर्गत – ठुमरी, दादरा, गजल, भजन, चैती, कजरी आदि के साथ संगति के लिए किया जाता है। इसमें लग्गी, लड़ी तथा ठेके की किस्मों का प्रयोग होता है। इसका वादन प्रायः मध्य व द्रुत लय में होता है। शास्त्रीय संगीत हेतु इसका प्रयोग नही होता है। दादरा ताल सोलो वादन के उपयुक्त नहीं है।

दादरा ताल में 6 मात्राओं का समपद ताल हैं। मात्राएँ 2 विभागों में बटी रहती हैं। प्रत्येक विभाग 3–3 मात्राओं का होता है। सम प्रथम मात्रा में 'धा' पर है। इस ताल में खाली का स्थान 1 हैं तथा ताली का स्थान भी 1 हैं।

मात्रा – 6, विभाग – 2, ताली – 1 पर तथा खाली – 4 पर

			ठेका			
धा	धी	ना	धा	ती	ना	धा
X			0			X

बोल समूह द्वारा ताल पहचानना – तालों में कुछ विशेष बोल समूह होते हैं जिससे उस ताल को पहचाना जाता है। जैसे दादरा ताल में धा धी ना ।

6.4 तालों को लयकारीयों में लिखना

लयकारी – समय की समान गति को लय कहते हैं। दो मात्राओं की क्रिया के मध्य होने वाला विश्रांति काल ही लय है और जब यह काल प्रयोग होन वाली मात्राओं के बीच समान रहता है तो वह निश्चित लय का स्वपरूप ले लेता है। अतः लय का सम्बन्ध मात्रा एव मात्राओं के बीच के समय से है।

लय समान्य रूप से तीन प्रकार की मानी गई है। विलम्बित, मध्य एवं द्रुत लय । काल के लम्बा होने पर विलम्बित लय स्थापित होती है। इस काल के कम हाने पर मध्य लय एवं उससे अधिक कम होने पर द्रुत लय हो जाती है। सामान्या रूप से मध्य लय का विश्रांति समय विलम्बित लय के विश्रांति समय का आधा होता हैं एवं द्रुत लय का विश्रांति मध्य लय में विसश्रांति समय का आधा होता है। संगीत में यह मान्यता स्थापित हो चुकी है एवं प्रचलन में है। विलम्बित लय को आधार लय मानने से मध्य लय का प्रयोग विलम्बित लय में दो बार एवं द्रुत लय का प्रयोग चार बार करने की आवश्यकता होगी अतः मध्य लय विलम्बित लय की दुगुनी, द्रुत लय मध्य लय की दुगुन होती है। का यही प्रयोग लयकारी कहलाता है। एक मात्रा में एक से अधिक मात्राओं का आधार लय के साथ प्रयोग लयकारी कहलाता है।

संगीत में विभिन्न लयकारी जैसे दुगुन, तिगुंन, चौगुन, आड, कुआड, एवं बिआड प्रयोग की जाती है।

दुगुन – एक मात्रा में दो मात्रा 1 2 1 2

तिगुन – एक मात्रा में तीन मात्रा 1 2 3 123

चौगुन – एक मात्रा में चार मात्रा 1234 1234

आड – एम मात्रा में डेढ़ मात्रा अथवा दो मात्रा में तीन मात्रा आड लयकारी को चयोडी लय भी लय कहा जाता हैं एवं इसको 3/2 की लयकारी के रूप में भी व्यक्त करते हैं। 1 ऽ 2 ऽ 3 ऽ

कुआड– इस लयकारी के विषय में दो मत हैं एक– आड की आड को कुआड कहते हैं अतः 9/4 जिसके अनुसार चार मात्रा में नौ मात्रा अथवा एक मात्रा में $2\frac{1}{4}$ अथवा सवा दो मात्रा का प्रयोग करते है। दो – 5/4 की लयकारी अर्थात चार मात्रा में पांच मात्रा अथवा एक मात्रा में सवा मात्रा । इस दुसरे मत का अधिक प्रचलन है एवं इसको सवागुन की लय भी कहते हैं।

पहले मत के अनुसार–:

1ऽ ऽ ऽ 2ऽ ऽ ऽ 3 ऽ ऽ ऽ 4 ऽ ऽ ऽ 5 ऽ ऽ ऽ 6 ऽ ऽ ऽ 7 ऽ ऽ ऽ 8 ऽ ऽ ऽ 9 ऽ ऽ ऽ

1 2 3 4

दुसरे मत के अनुसार–:

1 ऽ ऽ ऽ 2 ऽ ऽ ऽ 3 ऽ ऽ 4 ऽ ऽ ऽ 5 ऽ ऽ ऽ

1 2 3 4

बिआड लय–

इस लयकारी के विषय भी दो मत हैं। एक मत के अनुसार कुआड लय की आड बिआड लयकारी होती जिसे $^{9}/_{4} \times {}^{3}/_{2} = \frac{27}{8}$ के रूप में व्यक्त करते हैं एवं दूसरे मत के अनुसार $^{7}/_{4}$की लयकारी बिआड की लयकारी है। इसमें एक मात्रा में पैने दो गुन मात्रा प्रयोग की जाती है जिसे पौने दो गुन की लयकारी भी कहते हैं।

पहले मत के अनुसार :–

1ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 2 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 3 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 4 ऽ ऽ
ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 5 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 6 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 7 ऽ ऽ ऽ ऽ
ऽ ऽ 8 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 9 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 10 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 11
ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 12 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 13 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 14 ऽ ऽ ऽ
ऽ ऽ ऽ ऽ 15 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 16 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 17 ऽ ऽ ऽ ऽ
ऽ ऽ 18 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 19 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 20 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ
21 ऽ
ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 22 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 23 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 24 ऽ ऽ ऽ ऽ

ऽ ऽ ऽ 25 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 26 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ 27 ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ

दूसरे मत के अनुसार :–

1 ऽ ऽ ऽ 2 ऽ ऽ ऽ 3 ऽ ऽ ऽ 4 ऽ ऽ ऽ 5 ऽ ऽ ऽ 6 ऽ ऽ ऽ 7 ऽ ऽ ऽ

6.4.1 झपताल में लयकारी :–

झपताल

मात्रा – 10, विभाग – 4, ताली – 1, 3 व 8 पर, खाली – 6 पर

ठेका

धी	ना	धी	धी	ना	ती	ना	धी	धी	ना	धी
×		2			0		3			×

झपताल की दुगुन :–

धीना	धीधी	नाती	नाधी	धीना	धीना	धीधी	नाती	नाधी	धीना	धी
×		2			0		3			×

झपताल की दुगुन एक आवर्तन में :–

धीना	धीधी	नाती	नाधी	धीना	धी
0		3			×

झपताल की चौगुन :–

धीनाधीधी	नातीनाधी	धीनाधीना	धीधीनाती	नाधीधीना
×		2		
धीनाधीधी	नातीनाधी	धीनाधीना	धीधीनाती	नाधीधीना	धी
0		3			×

झपताल की चौगुन एक आवर्तन में :–

12धीना	धीधीनाती	नाधीधीना	धी
3			×

6.4.2 दादरा ताल में लयकारी :–

मात्रा – 6, विभाग – 2, ताली – 1 पर तथा खाली – 4 पर

ठेका

धा	धी	ना	धा	ती	ना	धा
X			**0**			**X**

दादरा ताल की दुगुन :

धाधी	नाधा	तीना	धाधी	नाधा	तीना	धा
X			0			X

दादरा ताल की दुगुन एक आवर्तन में :

धा	धी	ना	धाधी	नाधा	तीना	धा
X			0			X

दादरा ताल की चौगुन :

धाधीनाधा	तीनाधाधी	नाधातीना	धाधीनाधा	तीनाधाधी	नाधातीना	धा
X			0			X

दादरा ताल की चौगुन एक आवर्तन में :

धा	धी	ना	धा	ती धाधी	नाधातीना	धा
X			0			X

दुगुन व चौगुन लयकारी में आप जान चुके हैं कि जो भी लयकारी करनी हो उतनी मात्राएँ एक मात्रा में समायोजित कर दी जाती है। जैसे दुगुन में दो मात्राओं को एक मात्रा बना देते हैं। इसी प्रकार चौगुन में चार मात्राओं को एक बनाकर लयकारी की जाती है। लयकारी करते समय अधिक मात्राओं को एक मात्रा बनाते समय चिन्हों पर ध्यान देना आवश्यक होता है।

अभ्यास प्रश्न

क. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1. झपताल में खाली ..... मात्रा पर है।
2. दादरा ताल ..... प्रकृति की ताल है।
3. झपताल की एक आवर्तन में दुगुन ..... मात्रा में आएगी।
4. दादरा ताल विशेष रूप से ..... गायन शैली के साथ प्रयोग की जाती है।

6.5 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप पाठ्यक्रम की तालों को ठेकों एवं उनको विभिन्न लयकारी (दुगन व चौगुन) में लिपिबद्ध करने के विषय में जान चुके होंगे। इस इकाई के अध्ययन से आप लयकारी को भली–भांति समझ चुके होंगे। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आप लयकारी का प्रयोग अपने वादन(एकल वादन व संगत) में करने में सक्षम होगे जिससे आपका वादन प्रभावशाली होगा। इससे आप लयकारी को बोलने एवं बजाने में भी सक्षम होंगे। तबले की तालों के ठेकों को विभिन्न लयकारी में लिपिबद्ध करने एवं उसके क्रियात्मक स्वरूप को तबले में प्रस्तुत कर पायेंगे।

6.6 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क. रिक्त स्थानों की पूर्ति कीजिए :–

1. 6 मात्रा पर
2. चंचल
3. 5 मात्रा में
4. दादरा गायन शैली

6.7 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. वसन्त, *संगीत विशारद*, संगीत कार्यालय, हाथरस।
2. मिश्र, पं0 विजयशंकर, तबला पुराण।
3. श्रीवास्तव, श्री गिरीश चन्द्र, *ताल परिचय,* संगीत सदन प्रकाशन, इलाहाबाद।

6.8 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पाठ्यक्रम की किसी एक ताल का पूर्ण परिचय देते हुए उसको दुगुन व चौगुन लयकारी सहित लिपिबद्ध कीजिए।

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, जिला नैनीताल, पिनकोड–263139
फोन नं0 : 05946–286000 / 01 / 02
फैक्स नं0 : 05946–264232,
टोल फ्री नं0 : 18001804025
ई–मेल : **info@uou.ac.in**
वेबसाईट : **www.uou.ac.in**